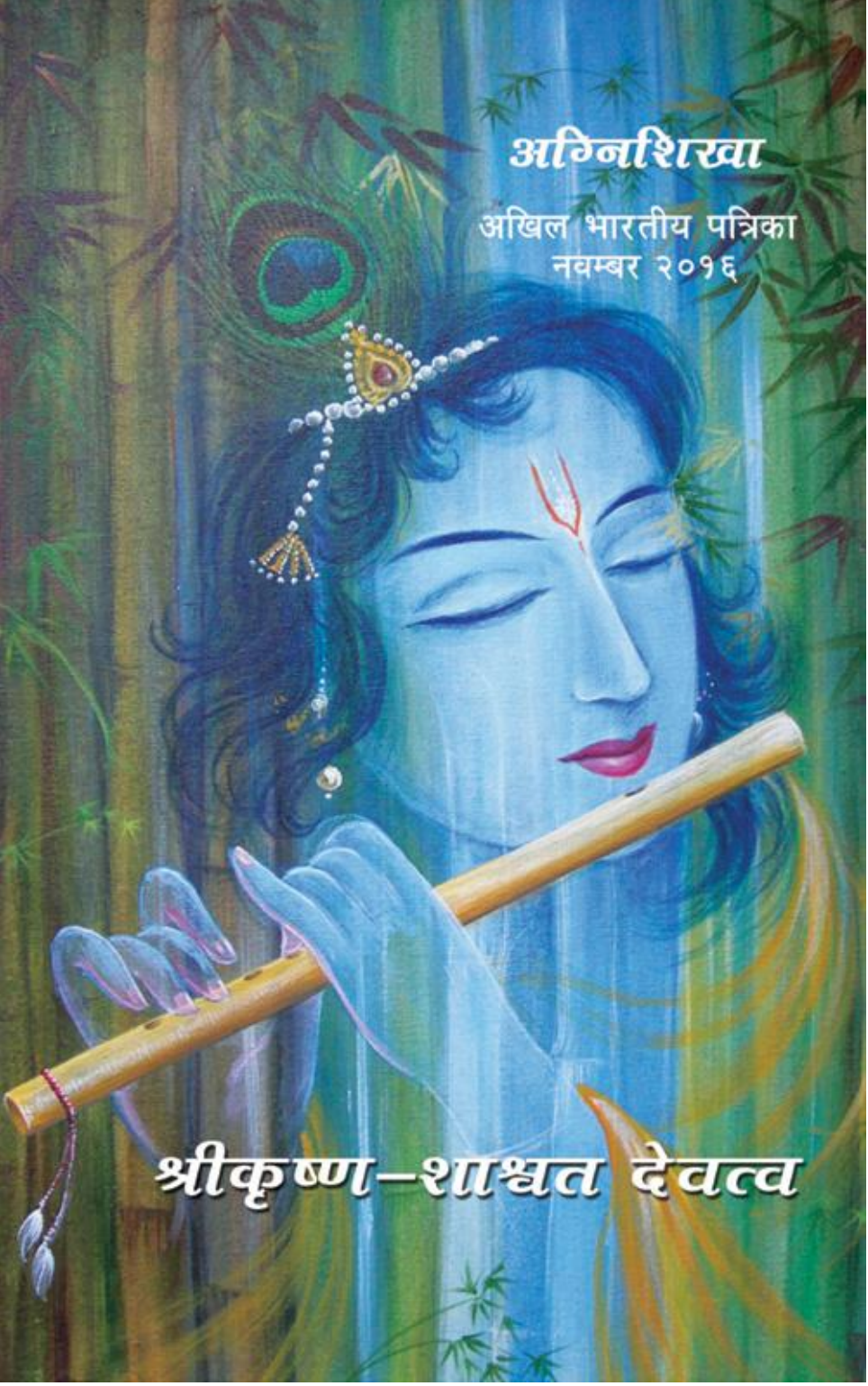

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
नवम्बर २०१६

श्रीकृष्ण–शाश्वत देवत्व

विषय-सूची

सम्पादकीय		३

श्रीकृष्ण—शाश्वत देवत्व

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के वचन)

कृष्ण (सॉनेट)	श्रीअरविन्द	५
इस योग की सर्वोच्च उपलब्धि		७
श्रीकृष्ण—शाश्वत देवत्व		८
अवतार श्रीकृष्ण		१७
श्रीकृष्ण—योग के दिव्य अधिपति		२३
श्रीअरविन्द और श्रीकृष्ण		३१

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३६
स्वप्न (कहानी)	श्रीअरविन्द	४९
ख्वाहिश	कंचन ('मैत्री' से साभार)	४९
एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	५०
दुनिया बड़ी खराब जगह है	स्व. श्री रवीन्द्रजी	५३
मेरे भी तो अधिकार छिन गये हैं...	वन्दना	५६

मुखपृष्ठ की चित्रकार—ऋतम् उपाध्याय

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

सामान्यतः श्रीकृष्ण को बांसुरी तथा मोरपंख के साथ दर्शाया जाता है।
बांसुरी है श्रीकृष्ण की वह पुकार जो हमें उनकी ओर खींचती है।
मोरपंख है विजय का प्रतीक।

—श्रीअरविन्द

सम्पादकीय टिप्पणी : सभी भूतपूर्व तथा वर्तमान आध्यात्मिक पुरुषों तथा अवतारों में निस्सन्देह श्रीकृष्ण बहुत ही विशेष स्थान रखते हैं। एक ओर तो उनका जटिल तथा बहुविध व्यक्तित्व उनके मानव व्यक्तित्व के सम्मोहक रहस्य को हमेशा बनाये रखता है तो दूसरी ओर उनकी अपूर्व सत्ता उस मानव अन्तरात्मा के लिए सतत आकर्षण बनी रहती है जो भगवान् से सदैव मुग्ध रहती है। वे वह सन्धि-स्थल हैं जहां भगवान् और मनुष्य की भेंट होती है, वे हैं इस सृष्टि की वह पहेली जो इसके अन्दर और साथ-साथ बाहर भी स्थित है, मनुष्य के लिए अभी तक प्रायः अचरितार्थ आदर्श लेकिन फिर भी वे मनुष्य के इतने निकट हैं, उसके इतने घनिष्ठ हैं मानों 'वे' ही हमारी सत्ता के उपादान, उसका सारतत्त्व हैं। वे हैं 'प्रज्ञा' तथा 'प्रेम', 'शक्ति' तथा 'माधुर्य', पूर्ण 'अनासक्ति' तथा पूर्ण 'आनन्द' के विरल सम्मिश्रण। अपने एकमेव व्यक्तित्व में वे उन सभी पूर्णताओं के प्रतीक हैं जिनके लिए मानव हमेशा अभीप्सारत रहता है। वे आधुनिक हैं, साथ ही साथ प्राचीन भी हैं, युवा देव हैं, साथ ही साथ सृष्टिके मूल तथा स्रोत भी हैं।

नवम्बर का यह अंक मुख्य रूप से श्रीकृष्ण को समर्पित है। नवम्बर 'सिद्धि-दिवस' (२४ नवम्बर) का भी महीना है जब श्रीकृष्ण श्रीअरविन्द के शरीर में अवतरित हुए थे और भावी कल के कार्य को जारी रखने के लिए विगत कल के अवतार ने एक अन्य भौतिक शरीर में उतरना सहर्ष स्वीकार किया था।

"सच पूछो तो वृन्दावन सद्भक्त-हृदय है।
यहीं मोहिनी वंशी बजती हरि की अनुक्षण।...
अनुभव कर देखो, तुम अन्तर में पाओगे,
कृष्ण और राधा की झांकी पा जाओगे।
तुम्हें मिलेगा अपने ही उर में वृन्दावन।
और मिलेंगे वहीं प्रेम के प्रभु के दर्शन।"

कृष्ण

(सॉनेट)

अन्ततः मुझे मिला इस मधुर और भीषण
जगत् में आत्मा के जन्म का उद्देश्य,
मैंने अनुभव किया पृथ्वी का क्षुधित हृदय जो
अभीप्सा करता है स्वर्ग के परे कृष्ण के चरण।

मैंने देखा है अमर नयनों का सौन्दर्य,
मैंने सुना है प्रिय का मादक वंशी-नाद,
और जाना है मृत्युरहित आनन्द का आश्चर्य
और अपने हृदय में दुःख को, जो है सदा के लिए निर्वाक्।

निकट और निकटतर अब संगीत आ रहा,
विलक्षण हर्षातिरेक से जीवन थरथरा रहा;
सम्पूर्ण प्रकृति है एक विशाल विरमावस्था अनुरक्तिपूर्ण
निज प्रभु के स्पर्श, आलिंगन, तन्मयता की आकांक्षिण।

जीवित रहे विगत युग इस एक क्षण को लक्ष्य कर;
जगत् धड़कता है कृतकृत्य मुझमें अब चिरकाल के अनन्तर।

—श्रीअरविन्द

वैयक्तिक सत्ता से आगे जाकर मायावादी अवर्णनीय सत्ता को देखता है; मैं उसके पीछे-पीछे वहां जा पहुंचा और उसके परे अवर्णनीय सत्ता में मैंने अपने कृष्ण को पाया।

इस योग की सर्वोच्च उपलब्धि

... इस योग की सर्वोच्च उपलब्धि तब होती है जब तुम इस तथ्य को जान लो कि सारा जगत् अनन्त दिव्य व्यक्तित्व की मात्र अभिव्यक्ति और लीला है, जब तुम सबमें निर्वैयक्तिक *सद् आत्मन्* को नहीं—जो अभिव्यक्त जगत् का आधार है, यद्यपि तुम उस ज्ञान को भी नहीं भूलते, बल्कि उन श्रीकृष्ण को देखते हो जो सबके आधार में होते हुए भी अव्यक्त और व्यक्त दोनों के परे हैं। *सद् आत्मन्* के परे होता है *असत्* जिसे बौद्ध शून्यवादी *शून्यम्* कहते हैं और उस शून्यम् के परे है *परात्पर पुरुष—पुरुषो वरेण्यः आदित्यवर्णः तमसः परस्तात्*। इन्होंने ही अपनी सत्ता से इस जगत् को सृष्ट किया और ये ही सर्वव्यापी हैं, ये ही अनन्त और सान्त ईश्वर, शिव तथा नारायण के रूप में इसे धारण करते हैं। यहीं लीलामय श्रीकृष्ण अपने प्रेम के द्वारा हम सभी को अपने प्रति आकृष्ट करते हैं, अपने प्रभुत्व द्वारा हम पर नियन्त्रण रखते हैं और इस बहुविध जगत् में हर्ष, शक्ति और सौन्दर्य की अपनी सनातन लीला रचते हैं।

यह जगत् सच्चिदानन्द का खेल है। एक दिन तुम देखोगे कि स्वयं जड़-भौतिक जड़ नहीं है, कोई विषय-वस्तु नहीं है बल्कि चेतना का ही एक रूप है, गुण है जिसे इन्द्रिय-ज्ञान अनुभव करता है। स्वयं घनत्व गुण, संहति तथा धृति यानी सामञ्जस्य तथा सचेतनता का संयोजन है, और कुछ नहीं। जड़-भौतिक, प्राण, मन और मन से परे भी जो कुछ है, सब श्रीकृष्ण है, अनन्तगुण ब्रह्म है जो संसार में सच्चिदानन्द के रूप में लीला कर रहे हैं। जब हमें इस तथ्य की उपलब्धि हो जायेगी, जब हम इस जगत् में सुरक्षित तथा सतत रूप से निवास करेंगे तब दुःख तथा पाप, भय, भ्रान्ति, आन्तरिक संघर्ष तथा पीड़ा—सभी कुछ पूरी तरह से हमारी सत्ता से बाहर निकाल दिये जायेंगे।

CWSA खण्ड १३, पृ. ७६-७७ —श्रीअरविन्द

श्रीकृष्ण—शाश्वत देवत्व

श्रीकृष्ण सबमें वास करते हैं

न केवल सजीव प्राणियों में बल्कि निर्जीव वस्तुओं में भी हमें नारायण के दर्शन करने चाहियें, शिव का अनुभव करना चाहिये और शक्ति के आलिंगन में स्वयं को समर्पित कर देना चाहिये। जब हमारी आंखें—जिन पर अभी जड़-भौतिक के विचार की ही पट्टी बंधी हुई है—परम 'प्रकाश' की ओर खुलेंगी, तब हम देखेंगे कि कुछ भी निर्जीव नहीं है, बल्कि सभी चीजों में वही परम प्राण, मानस, विज्ञान, सत्, चित् और आनन्द समाया हुआ है; भले वह उनमें अभिव्यक्त हो या अनभिव्यक्त, उनमें छिपा हुआ हो या विकसित या विकास की प्रक्रिया में हो या फिर एकदम से अदर्शनीय हो और उसे हम जड़ की संज्ञा दे दें। लेकिन 'हर एक चीज' सचमुच सजीव ही होती है। सभी चीजों में प्रभु का आत्म-सचेतन व्यक्तित्व पनपता रहता है और समय आने पर उसमें से फूट पड़ने में परमानन्द का अनुभव करता है—जैसे फल, फूल, धरती, पेड़, धातु—सभी चीजों में वह हर्ष समाया हुआ है और उसके बारे में तुम सचेतन हो सकते हो, क्योंकि सभी में श्रीकृष्ण वास करते हैं। यह मत सोचो कि भौतिक रूप से उन्होंने उनमें प्रवेश किया, क्योंकि सचमुच देश और काल का कोई अस्तित्व ही नहीं है, यह सब तो मानव-दृष्टि के लिए बनाये गये संयोजन और रूढ़ियां हैं। वास्तव में, भगवान् की रचनात्मक कला की ये सारी विशेषताएं हैं—और हम सभी प्रत्येक वस्तु में उस सच्चिदानन्द की अनुभूति पा सकते हैं।
CWSA खण्ड १३, पृ. ७८

श्रीकृष्ण की जगत्-लीला

प्रभु एक हैं, लेकिन वे अपने एकत्व से बंधे हुए नहीं हैं। हम यहां उन्हें हमेशा बहु के रूप में अभिव्यक्त होते हुए देखते हैं, इसलिए नहीं कि वे ऐसा करने के लिए बाध्य हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें ऐसा करने में आनन्द मिलता है, और अभिव्यक्ति के परे वे *अनिर्देश्यम्* हैं, यानी, न 'एक' और न 'बहु' के रूप में उनका वर्णन किया जा सकता है। उपनिषद् तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ इसी की चर्चा करते हैं; 'वे' *एकमेवाद्वितीयम्* हैं, लेकिन साथ

ही वे "यह मनुष्य, वह स्त्री, वह नीले पंखोंवाली चिड़िया, यह सिन्दूरी प्रभात" सब कुछ हैं। वे सान्त हैं, साथ ही अनन्त हैं, सभी के अन्दर के 'जीव' वे ही हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, "मैं अश्वत्थ पेड़ हूं", "मैं मृत्यु हूं, मैं वैश्वानर अग्नि हूं, मैं जठराग्नि हूं, मैं व्यास हूं, वासुदेव हूं, मैं ही अर्जुन हूं।" अपनी सान्त सत्ता में यह सब कुछ उनके चैतन्य की लीला है, अतः सब कुछ वास्तविक है। माया का अर्थ है, विभिन्न परिस्थितियों में प्रभु की अभिव्यक्ति। हम जो कुछ देखते हैं या उनके बारे में जो कुछ सोचते हैं, वे किसी भी तरीके से उन सबसे बंधे हुए नहीं हैं। इस माया से, यानी अज्ञान की इसी माया से हमें अपना पीछा छुड़ाना है जो चीजों को भगवान् से पृथक् रूप में लेती है, यानी उन्हें चैतन्य नहीं मानती और असीम को हमेशा सीमा में बांध कर रखना चाहती है। तुम्हें श्रीकृष्ण और गोपियों की वह कहानी तो याद है न कि एक बार जब नारदजी धरती पर उतरे तो उन्होंने कृष्ण को प्रत्येक गोपी के घर में, भिन्न शरीर में उपस्थित पाया, फिर भी वे वही समान श्रीकृष्ण थे। इस कहानी के भक्तिपूर्ण अर्थ के अलावा, जिसको तुम जानते ही हो, यह जगत्-लीला का सुन्दर चित्र भी है। वे सर्व हैं, प्रत्येक हैं, प्रत्यक्षतः भिन्न दीखने वाली प्रत्येक 'प्रकृति' के साथ वे ही प्रत्येक 'पुरुष' हैं, और साथ ही वे पुरुषोत्तम भी हैं जो राधा के साथ हैं, वे ही पराप्रकृति के साथ हैं और वे ही जब चाहें सबको अपने अन्दर समाहित कर सकते हैं और जब चाहें उन्हें अपने से बाहर प्रक्षिप्त भी कर सकते हैं। एक दृष्टिकोण से सभी गोपियां उनके साथ एक हैं, तदात्म हैं, दूसरे दृष्टिकोण से वे हमेशा भिन्न हैं क्योंकि वे हमेशा उनके अन्दर प्रच्छन्न रहती हैं या उनकी मर्जी के अनुसार अभिव्यक्त होती हैं। इन दृष्टिकोणों के बारे में विवाद करने का कोई अर्थ नहीं है। धीरज धरो, जब तक कि तुम 'प्रभु' के दर्शन न कर लो और स्वयं को और उनको जान न लो। और तब तुम स्वयं ही देख लोगे कि वाद-विवाद और चर्चाएं कितनी अनावश्यक चीजें हैं।

CWSA खण्ड १३, पृ. ८९-९०

जो कृष्ण को, नर में अवस्थित नारायण को नहीं पहचानता,
वह भगवान् को सम्पूर्णतः नहीं जानता। —श्रीमां

राधा और कृष्ण का प्रेम

भगवान् के लिए अन्तरात्मा की ललक को राधा और कृष्ण के गीतात्मक गहन प्रेम के प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता है; यानी, मनुष्य की प्रकृतिस्थ अन्तरात्मा भागवत परम आत्मा के प्रेम में पगी हुई है, उन परमात्मा के सौन्दर्य से वशीभूत, उनके अधीन, उनकी जादुई वंशी से मुग्ध, सभी मानव चिन्ताओं और कर्तव्यों से मुक्त, बस आकण्ठ डुबो देने वाले इस परम आवेग की ओर बही जाती है और जीवन के आरोह-अवरोह में कभी मिलन के परमानन्द का अनुभव करती है तो कभी विरह की टीस का; यही है वह शाश्वत उत्कण्ठा और पुनर्मिलन, यही है मानव-आत्मा और भगवान् के बीच प्रेम की लीला। CWSA खण्ड २०, पृ. ३७९

आन्तरिक सम्पर्क ही महत्त्वपूर्ण है

वास्तव में जिस चीज का महत्त्व है वह है, श्रीकृष्ण के साथ सम्पर्क, उनकी चेतना के प्रति झुकाव, उनकी उपस्थिति का भाव, उनके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध, अपनी अन्तरात्मा का उनके साथ एकात्म; और जब तक यह प्राप्त न हो जाये तब तक व्यक्ति को अभीप्सा का दामन थामे रखना चाहिये, भक्ति में विकसित होते रहना चाहिये और मार्ग के सभी उजालों को अपने अन्दर समेटते चलना चाहिये। जिसको यह सब प्राप्त हो जाये, जो उनकी उपस्थिति में जी चुका हो, जिसने उनकी आवाज सुनी हो, जिसने कृष्ण को सखा, प्रेमी, पथ-प्रदर्शक, गुरु, स्वामी इत्यादि के रूप में जान लिया हो और जिसकी चेतना उनके सम्पर्क से आपादमस्तक बदल गयी हो, जो मूर्त रूप से अपने अन्दर उनकी उपस्थिति का अनुभव करता हो उसके मन में फिर कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती और न वह बाहरी रूप से प्रश्नों के गोरखधन्धे में ही फंसता है।

उसी तरह, जिसने आन्तरिक वृन्दावन और गोपियों की लीला के साथ सम्पर्क साध लिया हो, आत्म-निवेदन कर दिया हो, और जो हर्ष तथा सौन्दर्य के जादू से मन्त्र-मुग्ध हो गया हो या जो मात्र बंसी की धुन पर लट्टू हो गया हो, उसके लिए बाकी चीजों का कोई मूल्य नहीं रह जाता। लेकिन एक और दृष्टिकोण से देखने पर यह भी कहा जा सकता है कि अगर व्यक्ति अवतार की ऐतिहासिक सत्यता को मान ले तब भी वह इस महान् आध्यात्मिक लाभ का साझी होता है और उसके पास इस विश्वास की ठोस अनुभूति होती है कि

कम-से-कम एक बार तो भगवान् ने प्रत्यक्षतः धरती को छुआ, यहां सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को सम्भव बनाया, और यह भी सम्भव कर दिया कि भागवत पराप्रकृति इस विकसनशील लेकिन अभी तक बहुत ही अपूर्ण पृथ्वी पर अवतरित हो सके।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४८४

दिव्य खिलाड़ी कृष्ण

कृष्ण अन्तरस्थ भगवान् हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। वे सर्वोच्च प्रभु के आनन्द और प्रेम का सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कुराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे एक साथ खिलाड़ी, खेल और खेल के सभी साथी, तीनों हैं। और चूंकि यह खेल, परिणामों-सहित पूर्ण रूप से जाना हुआ है, सोचा हुआ, इच्छित, व्यवस्थित तथा अपनी समग्रता में सचेतन रूप से खेला जाता है इसलिए इसमें खेल के आनन्द के सिवाय और किसी चीज के लिए स्थान ही नहीं हो सकता। अतएव "कृष्ण को देखने" का अर्थ है, अन्तरस्थ भगवान् को देखना, "कृष्ण से खेलने" का अर्थ है, अन्तरस्थ भगवान् के साथ एक होना तथा उनकी चेतना में भाग लेना। जब तुम इस स्थिति में पहुंच जाओ तो तत्काल दिव्य क्रीड़ा के आनन्द में प्रवेश पा लेते हो। जितना पूर्ण तुम्हारा तादात्म्य होगा उतनी ही पूर्ण तुम्हारी अवस्था होगी।

किन्तु यदि चेतना का कोई एक कोना सामान्य बोध, सामान्य समझ, सामान्य संवेदन को ही बनाये रखे तो तुम दूसरों के कष्ट को देखोगे, तुम इस क्रीड़ा को, जो कि इतने कष्ट का कारण होती है, बहुत निर्दयतापूर्ण पाओगे और तब अन्त में कहोगे कि जो भगवान् इस तरह की पीड़ा में आनन्द लेते हैं वे निश्चय ही भयानक उत्पीड़क होंगे; किन्तु दूसरी ओर, जब तुम भगवान् के साथ तादात्म्य की अनुभूति प्राप्त कर चुको, तो उस विशाल और अद्‌भुत प्रेम को नहीं भूल सकते जिसे वे अपनी क्रीड़ा में उंडेलते हैं, और तब तुम यह समझ जाते हो कि हमारी दृष्टि की सीमा ही हमें ऐसा निर्णय करने के लिए प्रेरित करती है और यह कि वे एक ऐच्छिक उत्पीड़क बिलकुल नहीं हैं बल्कि एक ऐसे महान् और दयालु प्रेम हैं जो जगत् और मनुष्यों को उनकी प्रगतिशील यात्रा में द्रुततम मार्गों के

द्वारा पूर्णता की ओर ले जाता है; यद्यपि यह पूर्णता सदा सापेक्ष होती है तथा इसे सदैव पार कर लिया जाता है।

किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब प्रगति-पथ पर आगे चलने के लिए इस ऊपरी कष्ट की आवश्यकता नहीं रहेगी, जब उन्नति अधिकाधिक सामञ्जस्य और आनन्द के साथ साधित हो सकेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ५७-५८

दिव्य बालक कृष्ण

कृष्ण वैश्व देवत्व तथा अन्तर्हित देवत्व, दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे जिनसे हम अपनी आन्तरिक सत्ता में और साथ ही इस अभिव्यक्त जगत् की प्रत्येक रचना में भी मिल सकते हैं।

और क्या तुम जानते हो कि उन्हें हमेशा एक बालक के रूप में क्यों दर्शाया जाता है? इसलिए कि वे हमेशा प्रगति करते रहते हैं। इस हद तक कि जैसे-जैसे जगत् पूर्ण बनता जाता है, उनकी क्रीड़ा भी पूर्ण से पूर्णतर होती जाती है—बीते कल की क्रीड़ा आगामी कल की क्रीड़ा नहीं रहेगी; जिस अनुपात में जगत् उनकी क्रीड़ा को प्रत्युत्तर देने और भगवान् के साथ उसका उपभोग करने के योग्य बनता जायेगा उसी अनुपात में उनकी क्रीड़ा अधिकाधिक सामञ्जस्यमय, अनुग्रहपूर्ण तथा हर्षयुक्त बनती चली जायेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १५

कृष्ण तथा राधा किसके प्रतीक हैं

कृष्ण वह 'दिव्य पुरुष' हैं जिनको श्रीअरविन्द यहां दिव्य बंसी-बजैया कहते हैं, अर्थात्, अन्तर्यामी और विश्वव्यापी भगवान् कहते हैं जो परम आकर्षण शक्ति हैं; और चैत्य व्यक्तित्व, यानी अन्तरात्मा, यहां जिसे राधा कहा गया है, बंसी-बजैया की पुकार का उत्तर देती है। अतएव आज की शाम इसी राधा-चेतना के विषय में कुछ कहने को मुझसे कहा गया है, अर्थात्, व्यक्तिगत अन्तरात्मा भगवान् के आह्वान का उत्तर कैसे देती है इस विषय पर बोलने को कहा गया है।... इस राधा-चेतना में प्रत्येक चीज को सतत आनन्द में परिवर्तित **कर देने की** सामर्थ्य होती है; क्योंकि वस्तुओं को उनके बेमेल बाह्य रूपों में देखने की जगह मनुष्य सर्वत्र केवल दिव्य 'उपस्थिति' को, दिव्य 'संकल्प-शक्ति' तथा 'भगवत्कृपा' को ही

देखता है; और प्रत्येक घटना, प्रत्येक तत्त्व, प्रत्येक परिस्थिति, प्रत्येक रूप एक ऐसे तरीके में, ब्योरे में बदल जाता है जिसके द्वारा मनुष्य घनिष्ठतर और गभीरतर रूप में भगवान् के अधिक समीप पहुंच सकता है। विरोध विलीन हो जाते हैं, कुरूपताएं विनष्ट हो जाती हैं; उसके बाद रह जाता है एक ऐसे प्रेम के अन्दर दिव्य 'उपस्थिति' का एकमात्र जाज्वल्यमान रूप जो सभी वस्तुओं में चमकता रहता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २६८-६९

श्रीकृष्ण—पशु-दल के चालक

"पशु को परिणत कर दो पशु-पति में; तुम सम्पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण बन जाओ।"

ओह! यह एक रूपक है।

पशु—अर्थात् भौतिक सत्ता की समस्त सहज प्रवृत्तियां, भौतिक सत्ता की आवश्यकताएं तथा सभी आदतें, भौतिक सत्ता के सभी आवेग-प्रवेग, सभी गतिविधियां, भोजन की आवश्यकता, नींद की आवश्यकता, कार्य की आवश्यकता, यथार्थतः वह सब कुछ जो सत्ता के पशु-भाग का निर्माण करता है, वह है पशु। और फिर श्रीअरविन्द देते हैं कृष्ण का प्रतीक, जिन्हें वे पशु-पति कहते हैं जो केवल एक प्रतीक है; इसका अर्थ यह है कि वास्तव में भागवत चेतना ही वह चीज है जो भौतिक सत्ता की समस्त क्रियावली पर अधिकार जमाती है और उन सब क्रियाओं का, उसकी सभी आवश्यकताओं का निर्देशन और पथ-प्रदर्शन करती है, जो मनुष्य में विद्यमान भौतिक पशु की गतिविधियों को संयमित और शासित करती हैं। श्रीअरविन्द उस चीज का प्रयोग कर रहे हैं जिसे हम भारतीय पौराणिक गाथा कह सकते हैं और भगवान् के प्रतीक के रूप में कृष्ण को तथा मनुष्य की पाशविक सहज वृत्तियों एवं पाशविक आवश्यकताओं के प्रतीक के रूप में पशु-दल को ले रहे हैं। अतएव, पशु-दल में होने के बदले तुम वह व्यक्ति बन जाते हो जो पशु-दल को चलाता है और उनकी गतिविधियों को अपने ऊपर आधिपत्य जमाने का अवसर देने के बदले उन सब पर शासन करता है...। मनुष्य बंधा होता है। साधारण जीवन में मनुष्य भौतिक जीवन के सारे क्रिया-कर्मों से तथा उसकी आवश्यकताओं से—भोजन,

नींद, काम-धाम, विश्राम आदि की आवश्यकता से—बंधा होता है; तो, एक पशु बने रहने की जगह, अर्थात्, इन चीजों के अधीनस्थ बने रहने और उनका नियन्त्रण मानने के लिए विवश होने की जगह, वह पशु-दल का 'पति' या 'चालक' बन जाता है जिसे श्रीअरविन्द कृष्ण कहते हैं, अर्थात् भगवान्, जो सत्ता की सभी गतिविधियों को अपने अधिकार में ले लेते हैं और दिव्य सत्य के अनुरूप उन्हें मार्ग दिखाते तथा परिचालित करते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४५०-५१

कृष्ण की क्रीड़ा का साथी होना

बहुविध क्रीड़ा का यह विश्व इसके प्राणियों को आनन्द प्रदान करने के लिए रचा गया है। यह भगवान् का उद्देश्य नहीं है कि आनन्द की उनकी यह क्रीड़ा बन्द हो जाये। वे चाहते हैं कि जगत् के प्राणी उनके खेल के सखा और साथी बन जायें ताकि वे धरती पर परमानन्द की बाढ़ ले आयें। हम अज्ञान के अन्धकार में इसलिए पड़े हैं क्योंकि, खेल के लिए ही प्रभु ने स्वयं को अलग-थलग कर लिया और इसलिए जगत् को उन्होंने अन्धकार से घेर लिया। उन्होंने खेल के कई नियम भी बनाये हैं ताकि उनका पालन कर हम इस अन्धकार से निकल कर, दोबारा प्रभु का साथ पा लें। अगर कोई इस खेल में भाग नहीं लेना चाहता, आराम करना चाहता है, तो प्रभु उसकी इच्छा भी पूरी करेंगे। लेकिन अगर स्वयं उन 'प्रभु' की खातिर कोई 'उनके' मार्ग का अनुसरण करे तो स्वयं भगवान् उसको इस जगत् में या अन्यत्र अपने खेल के उपयुक्त सखा के रूप में चुन लेते हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण का प्रियतम सखा तथा खेल का साथी था, इसीलिए उसे *भगवद्गीता* के चरम रहस्य की शिक्षा प्राप्त हुई।

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से

भागवत तथा वृन्दावन का सत्य

वृन्दावन यदि पृथ्वी पर नहीं तो क्या कहीं और है?

... देवताओं के जगत् में एक ऐसे आदर्श और सामञ्जस्यपूर्ण वृन्दावन का अस्तित्व है जिसका पृथ्वी का वृन्दावन केवल एक विकृत और हास्यजनक रूप है।

जिन लोगों का आन्तरिक विकास हो चुका है, चाहे वह इन्द्रियों का हो या मन का, वे इन सत्यों को, जिन्हें एक सामान्य मनुष्य नहीं देख पाता, देखते हैं और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अतएव, भागवत के लेखक एक हों या अनेक, निश्चय ही एक सुन्दर, अति वास्तविक और सच्चे आन्तरिक जगत् के साथ सम्बन्ध रखते थे। इन लेखकों ने जो कुछ वर्णन या अभिव्यक्त किया है वह सभी उन्होंने इसी जगत् में देखा और अनुभव किया था।

कृष्ण मनुष्य के शरीर में मौजूद थे या नहीं, यह एक बड़ी गौण बात है (शायद बिलकुल ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्त्व हो सकता है), क्योंकि कृष्ण एक वास्तविक सत्ता हैं, सजीव और कार्यरत। और उनका प्रभाव पृथ्वी के विकास और रूपान्तर में एक बहुत ही महान् तथ्य रहा है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ६८-६९

भगवान् का मानवता के साथ सम्बन्ध

... महाभारत के महान् युद्ध के पीछे जो मानव कृष्ण उपस्थित हैं वे वस्तुतः प्रतीकात्मक हैं। वे युद्ध के नायक से कहीं बढ़ कर हैं, वे हैं सचमुच पृथ्वी के गुह्य केन्द्र तथा गुप्त पथ-प्रदर्शक। महाभारत का युद्ध मनुष्यों तथा राष्ट्रों के एक पूरे जगत् का आन्दोलन है, उनमें से कुछ सहायक बने, जिन्होंने कृष्ण को अपना नेता माना, यद्यपि उसमें उनका कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं था; कुछ उनके विरोधी बने, उनके सम्मुख कृष्ण भी शत्रु के रूप में प्रकट हुए, लेकिन इसके पीछे भी वस्तुतः रहस्य ही था। कइयों को उन्होंने संघर्ष के लिए भड़काया भी; सचमुच इसके पीछे की भावना यह थी कि मानव अपने पुराने रूढ़िगत जगत् और पाप-पुण्य की परम्परागत भावनाओं से मुक्त हो सके जिसकी जड़ें उसके अन्दर दूर-दूर तक फैली हुई हैं। और कई जगत् में नयी सोच लाने के प्रतिनिधि थे; उनके लिए कृष्ण उनके परामर्शदाता, सहायक, मित्र बने। धरती तो अपने ढर्रे पर चलती चली जाती है, और जब-जब शत्रु का हाथ ऊपर उठता है, तब-तब अवतार धीमे से, बीच-बीच में सहायता के लिए प्रकट हो जाते हैं; मनुष्य उन्हें समझ तक नहीं पाते। यहां तक कि महाभारत में स्वयं अर्जुन—कृष्ण का परम मित्र तथा मुख्य सहायक—भी यह न जान पाया कि वह मात्र एक यन्त्र है और अन्त में उसे यह स्वीकार करना पड़ा कि उसने अपने दिव्य सखा को नहीं पहचाना। उसने श्रीकृष्ण से ज्ञान

पाया, उनकी शक्ति की सहायता पायी, उनका वह प्रेमपात्र बना, उनकी भागवत प्रकृति को न पहचानने पर भी अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आराधना की; लेकिन औरों की तरह वह भी अपने अहं से अछूता न था तथा श्रीकृष्ण की सीख, उनकी महानता और उनके दिग्दर्शन को भी अर्जुन ने तब तक सामान्य रूप में ही लिया जब तक कि कुरुक्षेत्र के भयानक युद्ध में सभी फंस न गये। तब अवतार ने अपना विराट्-रूप अर्जुन को दर्शाया, उसके पहले वे उसके सारथि-मात्र थे, वे युद्ध में हिस्सा तक न ले रहे थे; और यह भी ध्यान देने की बात है कि विराट्-रूप के दर्शन केवल अर्जुन ने किये। श्रीकृष्ण ने अपने अन्य चुने हुए लोगों को भी उसके दर्शन नहीं कराये।...

अतः श्रीकृष्ण थे मानवता के साथ व्यवहार करने वाले देवता के प्रतीक।

श्रीकृष्ण तथा अर्जुन का प्रतीकात्मक सख्य

अर्जुन तथा कृष्ण की प्रतीकात्मक मैत्री है मानवात्मा तथा भगवदात्मा के बीच की मैत्री; इस भाव को अन्य स्थलों में भी दर्शाया गया है—समान रथ पर सवार इन्द्र तथा कुत्स का स्वर्गारोहण, उपनिषद् में वर्णित एक ही शाखा पर दो पक्षियों का वास, ज्ञान के लिए तपस्यारत युगल—नर तथा नारायण। इन तीनों उदाहरणों में दिव्य ज्ञान का यही विचार है, जिसके बारे में *गीता* में कहा गया है कि सभी कर्मों के पीछे यह महानतर ज्ञान स्थित है कि सब कुछ उस परम ज्ञान की ओर ले जाता है जिसके ज्ञाता हैं स्वयं भगवान्। अर्थात् कर्म ही इस पृथ्वी का मूल है। इसी कारण *गीता* में अर्जुन तथा श्रीकृष्ण को किसी कुटी में तपस्यारत नहीं बल्कि योद्धा के रूप में तथा कुरुक्षेत्र के कोलाहलपूर्ण युद्ध में अश्वों की वल्गा थामे *गीता-दर्शन* प्रदान करते हुए दर्शाया गया है। अतः *गीता* के आचार्य श्रीकृष्ण न केवल मनुष्य में स्थित वे 'प्रभु' हैं जो ज्ञान के 'शब्द' प्रदान करते हैं बल्कि मनुष्य में स्थित वे 'प्रभु' भी हैं जो समस्त कर्म-जगत् का सञ्चालन करते हैं और जिनके द्वारा और जिनके लिए सारी मानवता का अस्तित्व है, जो यहां पृथ्वी पर संघर्ष और परिश्रम करती है और साथ ही उन्हीं 'प्रभु' की ओर सारा मानव-जीवन अग्रसर होता है और प्रगति करता है। 'वे' ही कर्म तथा समर्पण के गुप्त स्वामी तथा समस्त मानवजाति के परम सखा हैं।

CWSA खण्ड १९, पृ. १७-१८, १९

अवतार श्रीकृष्ण

अवतारवाद का अर्थ तथा उद्देश्य

जब लोग किसी भागवत अभिव्यक्ति के विषय में सोचते हैं तब वे यह समझते हैं कि निश्चय ही यह सामान्य मानवीय चीजों को करने में असाधारण पूर्णता होगी—एक असाधारण कार्यक्षमता, एक असाधारण राजनीतिक, काव्यात्मक अथवा कलात्मक क्षमता, यथार्थ स्मृति, किसी भी मानसिक त्रुटि से मुक्त, किसी भी पराजय अथवा विफलता से रहित। अन्यथा वे ऐसी चीजों के बारे में सोचते हैं जिन्हें वे अतिमानवीय कहते हैं, जैसे, कुछ लोगों ने मुझसे यह अपेक्षा की कि मैं भोजन बिलकुल न करूं अथवा उन्होंने यह चाहा कि मैं यह जानूं और उन्हें बताऊं कि दिन-प्रतिदिन बम्बई में 'कॉटन शेयर्स' का मूल्य क्या होगा, अथवा उनके समान ही जो यह समझते हैं कि बड़े योगी वे ही होते हैं जो कांटों पर सोते हैं या कीलें खाते हैं। भागवत अभिव्यक्ति के साथ इस सबका कोई तालमेल नहीं है।

इस मान्यता के अनुसार श्रीराम अदिव्य हो जायेंगे क्योंकि उन्होंने मायामृग का इस प्रकार पीछा किया मानों वह एक स्वाभाविक हिरण हो और श्रीकृष्ण भी अदिव्य हो जायेंगे क्योंकि वे जरासन्ध द्वारा सुदूर द्वारका में शरण लेने को बाध्य हो गये। ये मानवीय धारणाएं मिथ्या हैं। दिव्यता एक दूसरी चेतना के अनुसार कार्य करती है—ऊर्ध्व की सत्य-चेतना नीचे की लीला के अनुसार, लीला की आवश्यकता के अनुसार क्रिया करती है, न कि मनुष्यों की इन धारणाओं के अनुसार कि इसे क्या करना या क्या नहीं करना चाहिये। यह पहली चीज है जिसे व्यक्ति को पूरी तरह से समझ लेना होगा, अन्यथा व्यक्ति भागवत अभिव्यक्ति के विषय में कुछ भी नहीं समझ पायेगा।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४७४-७५ —श्रीअरविन्द

... जैसे ही मैंने श्रीअरविन्द को देखा,
मैं पहचान गयी कि ये वही सत्ता हैं,
जिन्हें मैं कृष्ण कहा करती थी। —श्रीमां

अवतार श्रीकृष्ण के विभिन्न पहलू

श्रीकृष्ण अवतार हैं। उन्होंने मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के नियमों को मान कर मानव आकार ग्रहण करना स्वीकार कर लिया और उसी के अनुसार उन्होंने अपनी लीला रची। अगर हम इस लीला के सुस्पष्ट तथा गुह्य अर्थ को पकड़ पायें तो हम इस जगत्-लीला के अर्थ, उद्देश्य तथा इसकी प्रक्रिया को भी समझने में समर्थ होंगे।

इस लीला अथवा खेल की पहली चाल है कि इसकी प्रत्येक क्रिया के पीछे पूर्ण ज्ञान है। कौन-सा ज्ञान किस क्रिया को सञ्चालित करता है इसका रहस्य *गीता* में श्रीकृष्ण ने उद्घाटित किया है।

महाभारत के श्रीकृष्ण समस्त कर्म के नायक, महान् योगी, संसार के एक महान् पुरुष, एक साम्राज्य के संस्थापक, राजनेता तथा योद्धा, और साथ ही क्षत्रिय-शरीर में ब्रह्मविद् थे। उनके जीवन में हम 'महाशक्ति' की अतुलनीय अभिव्यक्ति तथा रहस्यमय लीला को देखते हैं।

उस रहस्य की व्याख्या *गीता* में की गयी है।

श्रीकृष्ण जगतों के स्वामी हैं, सार्वभौम वासुदेव हैं, फिर भी अपनी महानता को छिपाते हुए उन्होंने मनुष्यों के साथ पिता और पुत्र का, भाई तथा पति का, घनिष्ठ सहचर तथा मित्र का और साथ ही शत्रु का भी सम्बन्ध बना कर जगत् की इस लीला में प्रवेश किया। अपने जीवन में उन्होंने आर्य ज्ञान के चरम रहस्य को अपनाया और साथ ही भक्ति-मार्ग के उच्चतम अर्थ को दर्शाया। *भगवद्गीता* की शिक्षा में इन्हीं सिद्धान्तों का सारतत्त्व है।

द्वापर तथा कलि के सन्धिकाल में श्रीकृष्ण ने अवतार-रूप ग्रहण किया। हर युग की सन्धि में भगवान् इसी तरह अवतरित हुए हैं। चारों युगों में जहां कलियुग सबसे अधम है, वहीं वह सर्वोत्तम भी है। वर्तमान सन्धि-काल के इस युग में कलि का राज चल रहा है। इसमें पाप को उकसाया जाता है और कलि के राज्य में यही मनुष्य की प्रगति का प्रमुख शत्रु है; कलियुग में ही मानव पतन के रसातल में धंस जाता है। लेकिन इसी युग में यह सम्भव होता है कि मनुष्य प्रत्येक बाधा से लड़ने की सामर्थ्य विकसित कर उसके परे चला जाये तथा यहीं पुराने विध्वंस से नूतन सृष्टि का जन्म होता है। जगत् के क्रमविकास की प्रक्रिया में अत्यधिक बढ़े हुए अशुभ तत्त्वों

को इसी युग में नष्ट किया जाता है और दूसरी ओर नये सर्जन के बीज बो दिये जाते हैं, उनमें अंकुर भी फूटने लगते हैं और वे ही आगे आने वाले सत्ययुग में विशाल वृक्ष में विकसित हो जाते हैं।

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से

कुरुक्षेत्र के युद्ध में प्रभु ने रक्षा की

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि कलियुग में भारत का पतन हुआ। लेकिन भगवान् धरती पर कभी उसके पतन के लिए अवतरित नहीं होते। अवतार हमेशा धर्म, जगत् तथा मनुष्य के उद्धार के लिए पृथ्वी पर उतरते हैं। कलियुग में भगवान् के प्रकट होने का यही कारण होता है कि इस समय मानव का सबसे अधिक पतन होता है और स्वाभाविक रूप से अनैतिकता का बोलबाला छा जाता है। अतः, मानवजाति को बचाने, अनैतिकता को नष्ट करने तथा कलियुग को आगे बढ़ने से रोकने और 'धर्म' को स्थापित करने के लिए इस युग में बार-बार अवतारों ने जन्म ग्रहण किया। जब श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ तब कलि के राज्य का आरम्भ हो चुका था। उनके आविर्भाव के भय के कारण ही कलि धरती पर अपने पैर नहीं जमा पाया। कृष्ण की कृपा से ही परीक्षित ने कलि को पांच गांव देकर उसी के युग में उसकी प्रभुता को रोक दिया। इस कलियुग के आरम्भ से ही मनुष्य तथा कलि के बीच एक घमासान युद्ध छिड़ गया है जो युग के अन्त तक चलेगा; इसीलिए युद्ध में सहायक तथा नायक के रूप में अवतारों ने बार-बार जन्म लिया है। कलियुग के प्रारम्भ में, ब्राह्मण की शक्ति को बनाये रखने, यानी, ज्ञान, भक्ति तथा निष्काम कर्म को बचाये रखने के लिए ही भगवान् उतरे। भारत की सुरक्षा में ही मनुष्य के कल्याण की आशा की नींव रखी हुई है। कुरुक्षेत्र में प्रभु ने ही रक्षा की। रक्तपात के उस सागर में, उस 'विराट्-सत्ता' ने महाकाल का रूप धारण किया और एक नूतन सृष्टि के कमल को प्रस्फुटित कर एक आनन्दमयी क्रीड़ा रची। —श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से

धर्म की परिपुष्टि

... श्रीकृष्ण के अवतार लेने का प्रचलित तथा पौराणिक कारण यह

बताया जाता है कि धरती पर दुर्योधन तथा उसके भाइयों अर्थात् कौरवों की अनैतिकता का बोझ इतना बढ़ गया था कि धरती ने प्रभु का आवाहन किया कि वे अवतरित होकर उसके बोझ को हलका कर दें; तभी कृष्ण के रूप में विष्णु ने अवतार ग्रहण किया और उत्पीड़ित पाण्डवों का उद्धार कर, आततायी कौरवों का विनाश किया। उससे पहले के युगों में भी विष्णु ने राम का अवतार ग्रहण कर रावण के अत्याचार को समाप्त किया, परशुराम का रूप लेकर असदाचारी बन गये क्षत्रियों का नाश किया, वामन का रूप धर कर दानव बलि के राज्य का संहार किया। लेकिन स्पष्टतः अवतार का रूप ग्रहण करने का व्यावहारिक, धार्मिक या सामाजिक अथवा राजनैतिक लक्ष्य—जो धार्मिक रूप में सब जगह प्रचलित है—अवतारवाद के सच्चे अर्थ को कतई नहीं दर्शाता। वह सचमुच उसके आध्यात्मिक अर्थ को अपने में नहीं समेट पाता, और अगर अवतार के कार्य की केवल बाहरी उपयोगिता होती तो हमें बुद्ध तथा ईसा को इस पद से अलग करना होता जिनका लक्ष्य अशुभ-कर्ताओं का विनाश करना और शुभ-कर्ताओं को ला बिठाना बिलकुल न था, बल्कि उन्होंने तो सभी मनुष्यों के लिए एक नया आध्यात्मिक सन्देश दिया और भगवान् की ओर प्रगति करने तथा आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए एक पथ खोलने का प्रयास किया। दूसरी ओर, अगर हम धर्म शब्द को केवल उसका धार्मिक अर्थ प्रदान करें, यानी, बस धार्मिक तथा आध्यात्मिक जीवन जीना ही इसका अर्थ हो तो हम विषय के सारतत्त्व तक तो पहुंच जायेंगे, लेकिन इसका खतरा बना रहेगा कि हम अवतार द्वारा होने वाले कार्य के सबसे महत्त्वपूर्ण अंश को खो बैठें। इतिहास साक्षी है कि जब-जब भगवान् ने अवतार-रूप लिया, तब-तब उन्होंने दोहरा कार्य किया; और यह अनिवार्य है, क्योंकि अवतार मानव-शरीर में भगवान् का कार्य करता है, यानी, बाहरी जगत् में आन्तरिक भागवत 'इच्छा' तथा 'ज्ञान' को फैलाता है और इससे आन्तरिक तथा बाहरी दोनों स्थानों पर कार्य होता है; अर्थात् अन्तरात्मा की प्रगति के साथ-साथ बाहरी जीवन भी परिवर्तित होने लगता है।

यही है अवतार के पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करने का अर्थ।

CWSA खण्ड १९, पृ. १६९-७०

श्रीकृष्ण ने अधिमानस की सम्भावना का द्वार खोल दिया

श्रीकृष्ण ने अधिमानस के दोनों पक्षों—निश्चल और गत्यात्मक—के साथ इसकी सिद्धि की सम्भावना को खोल दिया। बुद्ध ने मन से निकल, परम में जाकर निर्वाण की ओर बढ़ जाने का प्रयास किया, ठीक वैसे ही जैसे शंकर ने उनके बाद दूसरे प्रकार से किया। दोनों अन्य दूसरे चरणों को लांघ जाने और अज्ञात तथा निराकार निरपेक्ष को प्राप्त करने के प्रयास से सहमत थे। दूसरी ओर श्रीकृष्ण क्रमविकास की सामान्य प्रक्रिया द्वारा मार्गदर्शन कर रहे थे। अगला सामान्य कदम निराकार निरपेक्ष नहीं, बल्कि अतिमानस है। मैं समझता हूं कि अतिलंघन करने के प्रयास में बुद्ध ने शंकर के समान ही मुक्ति के गत्यात्मक पक्ष की उपेक्षा करके भूल कर दी। इसलिए कल्कि द्वारा भूल-सुधार करनी ही होगी।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४८८

श्रीकृष्ण अतिमानसिक प्रकाश नहीं हैं। श्रीकृष्ण के अवतरण का अर्थ होगा, अधिमानस प्रभु का अवतरण जो वस्तुतः स्वयं अतिमानस और आनन्द के अवतरण को नहीं लायेंगे बल्कि इसकी तैयारी करेंगे। श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं, क्रमविकास को अपने आनन्द की ओर ले जाते हुए ये अधिमानस के द्वारा इसे अवलम्ब प्रदान करते हैं।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४९९

कृष्ण पृथ्वी पर मुक्ति और आनन्द लाने के लिए आये

कृष्ण पृथ्वी पर मुक्ति और आनन्द लाने के लिए आये। वे मनुष्यों को, उन मनुष्यों को जो प्रकृति के तथा अपनी लालसाओं और दोषों के दास हैं, यह कहने के लिए आये कि यदि वे सर्वोच्च प्रभु में शरण लें तो वे समस्त दासता और समस्त पापों से मुक्त हो जायेंगे। किन्तु वे अपने पापों और पुण्यों से बहुत अधिक चिपटे हुए हैं, (क्योंकि बिना पाप के पुण्य भी नहीं रह सकता) वे अपने पापों से प्रेम करते हैं और यह सह नहीं सकते कि कोई मुक्त होकर समस्त दोषों से ऊपर उठ जाये। इसीलिए कृष्ण, यद्यपि वे अमर हैं, वर्तमान समय में वृन्दावन में सशरीर मौजूद नहीं हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ६७-६८

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

श्रीकृष्ण—योग के दिव्य अधिपति

कृष्ण के लिए प्रेम और भक्ति

जहां तक श्रीकृष्ण का प्रश्न है, क्यों नहीं हम सरल और सीधे मार्ग से उनके पास जायें? सरल प्रवेश-मार्ग का अर्थ है, विश्वास। यदि तुम प्रार्थना करते हो तो यह विश्वास बनाये रखो कि वे तुम्हारी प्रार्थना सुनते हैं। यदि उत्तर आने में विलम्ब भी हो तब भी यह विश्वास बनाये रखो कि वे जानते हैं और प्रेम करते हैं तथा वे समय के चुनाव में बुद्धिमानों से भी अधिक बुद्धिमान् हैं। तब तक चुपचाप मार्ग की भूमि को साफ-सुथरा करके रखो ताकि जब वे आयें तब कंकड़-पत्थर और जंगल में ठोकर न खा जायें। यह है मेरा परामर्श और मैं जानता हूं कि मैं क्या कह रहा हूं—क्योंकि तुम चाहे जो कुछ कहो, मैं सभी मानवीय कठिनाइयों और संघर्षों को अच्छी तरह जानता हूं और इनका उपचार भी जानता हूं। यही कारण है कि मैं हमेशा उन चीजों पर जोर डालता हूं जो संघर्षों और कठिनाइयों को यथासम्भव न्यूनतम कर देंगी; ये हैं—चैत्य झुकाव, श्रद्धा, पूर्ण और सरल विश्वास तथा भरोसा। तुम्हें स्मरण दिला दूं कि ये वैष्णव योग के सिद्धान्त हैं। निस्सन्देह, दूसरा वैष्णव मार्ग भी है जो ललक और निराशा के बीच झूलता है—उत्कट जिज्ञासा तथा विरह-वेदना के बीच। सम्भवतः इसी का अनुगमन करते तुम प्रतीत होते हो और मैं अस्वीकार नहीं करता कि व्यक्ति किसी भी दूसरे मार्ग के समान, इसके द्वारा भी लक्ष्य तक पहुंच सकता है, हां, यदि सच्चाई से उसका अनुगमन किया जाये। किन्तु तब जो इसका अनुगमन करते हैं, वे विरह में भी रस का अनुभव करते हैं, भागवत प्रेमी की अनुपस्थिति तथा सनक में भी आनन्द महसूस करते हैं। उनमें से कुछ ने यह गान किया है कि उन्होंने आजीवन उसका पीछा किया, परन्तु हमेशा वह उनकी दृष्टि से ओझल हो गया, और उसमें भी उन्हें आनन्द आता है और वे उसका पीछा करना नहीं छोड़ते। परन्तु तुम्हें इसमें कोई रस नहीं मिलता। इसलिए तुम मुझसे अपने लिए इसकी स्वीकृति की आशा नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण का अनुगमन सब प्रकार से करते रहो, परन्तु लक्ष्य तक पहुंचने के दृढ़ निश्चय के साथ। विफलता की आशा के साथ इसे न करो और न ही आधे मार्ग में रुक जाने की सम्भावना को ही स्वीकार करो।

श्रीकृष्ण के पास सीधा जाना आसान नहीं

... श्रीकृष्ण के पास सीधा जाना सुरक्षित अथवा आसान नहीं है; यह कभी-कभी भीषण रूप से खतरनाक हो सकता है, यदि साधक में कुछ ऐसी चीज हो जो उसकी मनोवृत्ति की शुद्धता तथा एकनिष्ठता के बीच हस्तक्षेप करती हो। वैसी अवस्था में कोई भी अनुचित कामना, दम्भ, घमण्ड, वासनात्मक अशुद्धता, महत्त्वाकांक्षा या कोई और सुस्पष्ट दौर्बल्य साधना में गम्भीर विकृति का मार्ग खोल सकता है जो अनुचित दिशाओं में जा सकता है, विघटन या विध्वंस, यहां तक कि आध्यात्मिक सर्वनाश में परिणत हो सकता है। श्रीकृष्ण का अपना प्रभाव अनुचित प्रभाव नहीं हो सकता, यदि यह वास्तव में उन्हीं का है, किन्तु किसी अन्य प्रभाव को उनका प्रभाव समझ कर स्वीकार कर लेने की भूल लोग आसानी से कर बैठते हैं। विशेषकर, वे प्रेम तथा सौन्दर्य तथा आनन्द के प्रभु हैं, और मनुष्यों के लिए, जो हमेशा इन चीजों की खोज में अनुचित दिशा में चले जाते हैं और उनकी खोज में भी अनुचित मार्गों में भटक जाते हैं, कुछ भी आसान नहीं है। यह अनुभव निश्चय ही बहुत से कारणों में से एक रहा होगा कि क्यों ऋषिगण गुरु के माध्यम से इस पथ पर जाने के लिए जोर डालते हैं और कहते हैं कि श्रीकृष्ण को पाना अन्यथा सम्भव नहीं है। यही कारण है कि वे वैराग्य पर, मानव प्रकृति के सामान्य लक्ष्यों व उद्देश्यों से अनासक्त होने पर जोर डालते हैं और इन्हें आवश्यक समझते हैं। यह भी एक कारण है कि क्यों श्रीकृष्ण तब तक प्रकट होना पसन्द नहीं करते जब तक उनके लिए भूमि साफ-सुथरी न हो जाये! किसी शक्ति या प्रभाव का हस्तक्षेप—जो अपने को कृष्ण के समान प्रस्तुत करे, उनके रूप या वाणी का भी अनुकरण करे—इसे स्वीकार कर लिये जाने पर व्यक्ति के लिए यह घातक होगा। परन्तु उनकी वास्तविक अभिव्यक्ति भी किसी व्यक्ति में, जो अभी इसके लिए तैयार नहीं है, अस्तव्यस्तता ला सकती है। व्यक्ति को इन खतरों से सावधान रहना होगा और केवल गुरु ही उनके विरुद्ध ढाल का काम कर सकते हैं।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४८७-८८, ४८८-८९

कृष्ण की लीला : रूप-रंगों के पीछे छिपी प्रगति की शक्ति। —श्रीमां

श्रीकृष्ण की कृपा

... जहां तक उस बिन्दु का प्रश्न है जो तुम्हें उलझन में डाल देता है, वह केवल एक भक्त की भावना तथा प्रेक्षक के प्रेक्षण के बीच में भ्रान्ति से उत्पन्न हुआ है। निस्सन्देह भक्त कृष्ण से इसलिए प्रेम करता है कि वे प्रीतिकर हैं, प्रेम के योग्य हैं, अन्य किसी कारण से नहीं—यह उसकी भावना है और यह उसकी सच्ची भावना है। उसके पास यह माथा-पच्ची करने का समय नहीं है कि उसके अन्दर वह कौन-सी चीज है जो उसे प्रेम करने के योग्य बनाती है। यह तथ्य कि वह प्रेम कर पाता है उसके लिए पर्याप्त कारण है और उसे अपनी भावनाओं का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है। उसके लिए श्रीकृष्ण की कृपा का कारण कृष्ण के ही प्यारेपन में है, भक्त के समक्ष उनके प्रकटीकरण, उनके बुलावे, उनकी मुरली की धुन में है। हृदय के लिए यह पर्याप्त है, या, यदि कुछ और चीज है तब यह वह ललक है जिसके कारण अन्य लोग या सब लोग मुरली को सुन सकते हैं, मुखमण्डल देख सकते हैं, इस प्रेम की समस्त सुन्दरता तथा आनन्दातिरेक की अनुभूति पा सकते हैं।

आन्तरिक तैयारी कहीं अधिक आवश्यक होती है

भक्त का हृदय नहीं बल्कि प्रेक्षक का मन है जो प्रश्न उठाता है कि यह कैसी बात है कि गोपियों को बुलावा आया और उन्होंने तुरन्त प्रत्युत्तर दिया और अन्य—उदाहरणार्थ ब्राह्मण स्त्रियां नहीं बुलायी गयीं अथवा उन्होंने तुरन्त प्रत्युत्तर नहीं दिया। यदि एक बार मन यह प्रश्न उठाता है तब दो सम्भव उत्तर हैं—एक है यह कि वह श्रीकृष्ण का मात्र संकल्प है जिसका कोई कारण नहीं है और जिसे मन उनका परम दिव्य चुनाव या उनकी मनमानी दिव्य सनक कहेगा, अथवा उस हृदय की पात्रता जिसे बुलाया जाता है, और इसे ही अधिकारी-भेद कहा जाता है। एक तीसरा उत्तर होगा—परिस्थितियां, उदाहरणार्थ, आध्यात्मिक धरातल से अलग-थलग सुरक्षित बाड़े में बन्द रहना। परन्तु परिस्थितियां कृपा को क्रिया करने से कैसे रोक सकती हैं भला? अलग-थलग रहने के बावजूद कृपा क्रिया करती है—ईसाई, मुसलमान भी कृष्ण की कृपा का प्रत्युत्तर देते हैं। बाघ, पिशाच भी, यदि वे उन्हें देख लें, उनकी मुरली सुन लें, प्रेम करने के लिए बेबस हो जायेंगे। हां, किन्तु क्यों कुछ ही लोग उनकी मुरली सुनते

हैं, उन्हें देखते हैं, परन्तु अन्य नहीं कर पाते? हमलोग दो विकल्पों की ओर पुनः पीछे लौट आते हैं, श्रीकृष्ण की कृपा उसे बुलाती है जिसका वह बिना कोई कारण बताये चुनाव करती है या उसे अस्वीकार करती है... या फिर वे ऐसे हृदयों को बुलाते हैं जो पुलकित होने की क्षमता विकसित कर चुके हैं और उनकी पुकार पर छलांग लगा सकते हैं—और उस स्थिति में भी वे उस निर्णायक मुहूर्त के आने तक प्रतीक्षा करते हैं। यह कहना कि यह चीज योग्यता की किसी बाहरी विशेषता या विशेषता की प्रतीति पर निर्भर नहीं करती, निस्सन्देह सच है। हो सकता है कि कुछ सख्त परतों के बावजूद कुछ लोग जाग्रत् होने को तैयार हों, हो सकता है कि श्रीकृष्ण को उनके अन्दर कुछ दिखायी पड़ता हो, परन्तु वह उन्हें नहीं दीखता। शायद मुरली की तान आरम्भ होने से बहुत पहले से यह 'कुछ' उनके अन्दर मौजूद हो, इसीलिए वे कइयों की सख्त परतों को पिघलाने में व्यस्त रहते थे जिससे जागरण की धुन सुनायी पड़ने पर, हृदय के छलांग लगाते समय वे स्वयं को पीछे न खींच लें। गोपियों ने इसे सुना और वे जंगल की ओर दौड़ पड़ीं—अन्य ऐसा नहीं कर सके—या क्या उन्होंने यह सोचा कि यह केवल गंवारू संगीत है या कोई अशिष्ट ग्वाला-प्रेमी अपनी प्रेमिका को वंशी बजा कर बुला रहा है, न कि ऐसी पुकार है जिसे विद्वान्, सांस्कृतिक तथा गुणवान लोग भगवान् की पुकार के रूप में मान्यता दें।

अधिकारी-भेद

... कुछ ऐसी चीज है जो अधिकारी-भेद के लिए कही जाती है। परन्तु निस्सन्देह इसे व्यापक अर्थ में समझना होगा—कुछ लोगों को कृष्ण की मुरली को मान्यता देने का अधिकार हो सकता है, कुछ को ईसामसीह की पुकार के लिए, कुछ को शिव के नृत्य के लिए—प्रत्येक को भागवत पुकार के लिए अपने तरीके से तथा अपनी प्रकृति के अनुसार उत्तर देने का अधिकार हो सकता है। अधिकार को अनम्य मानसिक शब्दावली में व्यक्त नहीं किया जा सकता, यह आध्यात्मिक और सूक्ष्म वस्तु है; जिसे बुलाया जाता है तथा जो बुलाता है इन दोनों के बीच यह कुछ गूढ़ और गोपनीय सम्बन्ध है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४९१-९२ —श्रीअरविन्द

श्रीकृष्ण तथा उनकी मौज

यदि व्यक्ति श्रीकृष्ण को पाना चाहता है, तो वह उन्हें पा लेता है—किन्तु वे ऐसे देव हैं जो बड़ी परीक्षा लेते हैं और तुरन्त नहीं आते, यद्यपि वे किसी भी समय अचानक प्रकट भी हो सकते हैं। परन्तु सामान्यतः व्यक्ति को उन्हें इतना अत्यधिक और इतना हठपूर्वक चाहना होगा कि इसके लिए कुछ भी मूल्य चुकाने को वह तैयार रहे। व्यक्ति को जानना होगा कि कैसे प्रतीक्षा करनी चाहिये, साथ ही चाहना भी होगा—दीर्घतम अस्वीकृति की ओर ध्यान दिये बिना आग्रह पर आग्रह करते ही रहना होगा। यह चैत्य कर सकता है —परन्तु मन और प्राण को भी ऐसा करना सीखना होगा।

निश्चय ही कृष्ण को काफी मनमौजी होने का, कठिन बरताव करने तथा विनोदशीलता या मजाक (लीला!) के लिए श्रेय दिया जाता है, पर वे लोग, जिनके साथ ये ऐसी लीला करते हैं, हमेशा तुरन्त इन सबका महत्त्व नहीं समझ पाते। परन्तु उनके मनमौजीपन में विवेचना के साथ-साथ एक गुप्त विधि है और जब वे इससे बाहर आते हैं और तुम्हारे प्रति अच्छा बरताव करने की मौज में होते हैं, तब उनमें एक चरम आकर्षण, सम्मोहन, प्रलोभन की पराकाष्ठा होती है और तुमने जितना कष्ट झेला है वह उससे कहीं अधिक क्षतिपूर्ति कर देती है।

शब्द के समुचित अर्थ में गोपियां साधारण स्त्रियां नहीं हैं—वे अपने प्रेम, भावप्रवण भक्ति, निःसंकोच आत्मदान की पराकाष्ठा के कारण असाधारण हैं। जिसके पास भी यह सब है, वह, अन्य दृष्टियों से कितनी भी दीन-हीन अवस्था में क्यों न हो—विद्या, बाह्य पवित्रता आदि-आदि, आसानी से कृष्ण का अनुगमन कर सकता और उन्हें प्राप्त कर सकता है। गोपियों के प्रतीक का यही अर्थ मुझे मालूम पड़ता है। निस्सन्देह अन्य अनेक अर्थ हैं—यह केवल उनमें से एक है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४९३

राधा के साथ कृष्ण 'भागवत प्रेम' का प्रतीक हैं। बांसुरी 'भागवत प्रेम' की पुकार है; मोर 'विजय' का प्रतीक है।

CWSA खण्ड ३०, पृ. १५७

कृष्ण की ज्योतियां

स्वर्णिम तथा नीली ज्योतियां दोनों कृष्ण की ज्योतियां हैं।

मैंने कहा कि नीली और स्वर्णिम दोनों ज्योतियां एक साथ कृष्ण और दुर्गा-महाकाली की सम्मिलित उपस्थिति का संकेत करती हैं।...
CWSA खण्ड ३०, पृ. ११८, १२२

श्वेतवत् नीली ज्योति कृष्ण की या मेरी है; गहनतर नीली ज्योतियां प्रायः उच्चतर चेतना से ज्योति का संकेत देती हैं।

दो पीत नीली ज्योतियां हैं, एक जो श्वेतवत् नीली है वह श्रीअरविन्द की ज्योति मानी जाती है, दूसरी बिलकुल नीली जो मन के ठीक ऊपर है, उच्चतर चेतना की है।

नीली ज्योति का अर्थ रंग की ठीक-ठीक या यथार्थ विशेषता पर तथा इसकी आभा तथा इसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। ज्योत्स्ना के समान श्वेतवत् नीली ज्योति कृष्ण की या श्रीअरविन्द की ज्योति मानी जाती है—हलकी नीली बहुधा प्रदीप्त मन की ज्योति होती है—एक अन्य गहरी नीली उच्चतर मन की ज्योति है; एक और, बैंगनी वर्ण के निकट नीली—वह प्राण में एक शक्ति की ज्योति है।

कृष्ण की भिन्न-भिन्न ज्योतियां होती हैं—पीत हीरक नीली, चमेलिया (लैवेण्डर) नीली, गहरी नीली आदि। यह उस लोक पर निर्भर करता है जहां यह अभिव्यक्त होती है।

सभी नीली ज्योतियां कृष्ण की नहीं होतीं। नीला राधा का भी रंग है।

जामुनी वास्तव में भागवत करुणा का रंग या ज्योति है, वैसे ही यह कृष्ण की कृपा की भी द्योतक है।
CWSA खण्ड ३०, पृ. १२६, १२८

वैष्णव भक्ति तथा अतिमानसिक योग

जहां तक कृष्ण तथा भक्ति का प्रश्न है, मेरे ख्याल से मैंने एक से अधिक बार उत्तर दे दिया है। मुझे कृष्ण की आराधना अथवा भक्ति के वैष्णव रूप से कोई आपत्ति नहीं है और न ही वैष्णव भक्ति तथा मेरे अतिमानसिक योग में कोई विसंगति है। वास्तव में अतिमानसिक योग का कोई विशिष्ट और एकनिष्ठ रूप नहीं है : सभी मार्ग अतिमानस की ओर ले जा सकते हैं, ठीक वैसे ही जैसे सभी मार्ग भगवान् की ओर ले जा सकते हैं।

निश्चय ही, मैं तुम्हारी मदद करूंगा और कर रहा हूं और हमेशा करता रहूंगा; मैं ऐसा करना बन्द भी कर सकता हूं या तुम्हें यहां से जाने के लिए भी कह सकता हूं, लेकिन इसमें कोई समझदारी नहीं है। यदि तुम अध्यवसाय करते रहो तब तुम स्थायी भक्ति और सिद्धि, जो तुम चाहते हो, उसे पाने में विफल नहीं हो सकते, किन्तु तुम्हें कृष्ण पर पूरा भरोसा करना सीखना चाहिये कि वे जब सब कुछ तैयार पायेंगे और जब समय आ जायेगा तब वे तुम्हें जरूर यह सब दे देंगे। यदि वे चाहते हैं कि तुम अपनी अपूर्णताओं और अशुद्धताओं को पहले साफ-सुथरा करो, यह तो समझ में आने वाली बात है। मैं नहीं समझ पाता कि तुम इसे करने में क्यों सफल नहीं हो सकते जब कि तुम्हारा ध्यान निरन्तर इसी ओर मुड़ा हुआ है।

पहला पग है, उन अशुद्धियों को देख पाना और पहचानना; उन्हें सुदृढ़ संकल्प के साथ अस्वीकार करना दूसरा पग है, उनसे अपने-आपको पूरी तरह पृथक् करना जिससे यदि वे प्रवेश करें भी तो एक विदेशी तत्त्व के रूप में, तुम्हारी सामान्य प्रकृति के अंश के रूप में नहीं बल्कि बाहरी सुझाव के रूप में—यह उनकी अन्तिम अवस्था है। यदि एक बार भी उन्हें देख और पहचान लिया जाये तो वे स्वतः क्षीण और अदृश्य हो जायेंगी। परन्तु अधिकतर लोगों के लिए इस प्रक्रिया में लम्बा समय लगता है। ये चीजें तुम्हारे लिए नयी नहीं हैं; ये वैश्व मानव-प्रकृति के भाग हैं।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४९४-९५

प्रत्येक को अपना तरीका अपनाना होता है

... परन्तु मैंने पहले ही कई बार कहा है कि तुम्हारी कृष्ण की साधना करने या आनन्द या मिलन के लिए तुम्हारी लालसा के प्रति मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैंने न तुम पर और न ही दूसरों पर अतिमानस की साधना करने या मुझे अवतार के रूप में स्वीकार करने के लिए कभी दबाव डाला है। ये चीजें तुम्हारे या दूसरों के द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर के रूप में उठी हैं और मैंने उन्हें ज्ञान की बातों के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु प्रत्येक को अपने लक्ष्य तक अपने मार्ग और अपनी प्रकृति से ही जाना होगा। वैष्णव आदर्श के अनुसार अहैतुकी भक्ति ही श्रेष्ठतम मार्ग है और द्रुततम भी, किन्तु यदि व्यक्ति इसके योग्य या इसे करने में समर्थ नहीं है तब सहैतुकी भक्ति भी पर्याप्त है। अथवा यदि व्यक्ति में भक्ति के प्रति झुकाव नहीं है तब अन्य बहुत-सी विधियां हैं। अथवा व्यक्ति यदि, कोई विधि अपनाना नहीं चाहता, तब, जैसा कि मैंने 'क्ष' के प्रश्न के उत्तर में कहा है—प्रकृति में कोई चीज 'आत्मन्' को पाने का दबाव अनुभव करती है; यदि ऐसा है तब वे ही हैं तुम्हारे लिए भगवान् या कृष्ण या श्रीमां या अन्य कोई भी देवी-देवता जिन पर तुम्हें विश्वास हो।

यदि तुम अपने अन्दर की प्रेरणा को जानते हो तब तो यह बहुत ही अच्छा है, इसका सीधा अनुगमन करो—सवाल करने या इस तरफ या उस तरफ जाने की जरूरत नहीं है। हृदय के आवेग का अनुगमन करते रहो जब तक कि यह अपनी खोज के लक्ष्य तक पहुंच न जाये।

CWSA खण्ड २९, पृ. ४९५

जो श्रद्धा वैश्व भगवान् के प्रति जाती है वह लीला की आवश्यकताओं के कारण अपनी क्रियाशक्ति में सीमित रहती है।

इन सीमाओं से पूरी तरह छुटकारा पाने के लिए तुम्हें परात्पर भगवान् तक पहुंचना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २५७

श्रीअरविन्द और श्रीकृष्ण

वासुदेवम् सर्वम् इति

मैंने जेलखाने पर नजर डाली जो मुझे मनुष्यों से अलग कर रहा था, अब यह ऊंची दीवारों से और घिरा हुआ नहीं था जिसमें मैं कैद था; नहीं, वासुदेव ने ही मुझे चारों ओर से घेर लिया था। मैंने अपनी कालकोठरी के सामने के वृक्ष की शाखाओं के नीचे चहलकदमी की, किन्तु यह वृक्ष नहीं था, मैं जानता था ये वासुदेव थे, ये श्रीकृष्ण थे जिन्हें मैंने वहां खड़े देखा और वे मेरे ऊपर अपनी छाया फैला रहे थे। मैंने अपनी कालकोठरी की सलाखों को देखा, उस जाली को देखा जो दरवाजे का काम कर रही थी और मैंने पुनः वासुदेव को देखा। नारायण ही मेरी रक्षा कर रहे थे और मेरे ऊपर पहरा दे रहे थे। अथवा जब मैं उन रूखे-खुरदुरे कम्बलों पर लेटा जो मुझे बिस्तर के लिए दिये गये थे, और मैंने अपने चारों ओर श्रीकृष्ण की बांहों को महसूस किया, अपने मित्र और प्रेमी की बांहों को। यह गहनतर अन्तर्दृष्टि का प्रथम उपयोग था जो उन्होंने मुझे दी। मैंने जेलखाने के कैदियों को देखा, चोर, हत्यारे, ठग, और जैसे ही उन पर मेरी नजर पड़ी, मुझे वासुदेव दिखायी पड़े, इन धुंधली आत्माओं तथा दुरुपयुक्त शरीरों में मुझे नारायण ही मिले।

CWSA खण्ड ८, पृ. ६

श्रीकृष्ण के प्रति उन्मुखता बाधा नहीं है

मैंने सोचा कि मैं पहले ही तुम्हें बता चुका था कि कृष्ण की ओर तुम्हारी उन्मुखता बाधा नहीं है। जो भी हो, मैं तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में इसका दृढ़तापूर्वक समर्थन करता हूं। यदि हम इस पर विचार करें कि जब उन्होंने मेरी अपनी साधना में ही इतनी बड़ी और सचमुच प्रबल भूमिका निबाही तब यह बड़ी विचित्र बात होगी कि तुम्हारी साधना में उनकी भूमिका को आपत्तिजनक माना जाये। सम्प्रदायवाद मत और कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित होता है, आध्यात्मिक अनुभूति से नहीं। कृष्ण पर एकाग्रता इष्टदेवता के प्रति आत्म-समर्पण है। यदि तुम कृष्ण को प्राप्त कर लेते हो तब तुम भगवान् को प्राप्त कर लेते हो। यदि तुम अपने-आपको उन्हें समर्पित कर सकते हो तब तुम अपने-आपको मुझे ही अर्पित करते हो। तदात्म प्राप्त करने की तुम्हारी असमर्थता इसलिए हो

सकती है क्योंकि तुम भौतिक पक्षों को चेतन या अचेतन रूप से आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे रहे हो।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ४३१ १८ जून १९४३

श्रीकृष्ण और वेद

श्रीकृष्ण ने मुझे वेदों का वास्तविक अर्थ बतलाया है, इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने मुझे भाषा-शास्त्र का एक नया विज्ञान भी दर्शाया है जिसमें मानव-वाणी की प्रक्रिया तथा मूल दिग्दर्शित है और जिससे एक नया 'निरुक्त' बनाया जा सकता है और इस पर आधारित वेद का नया अर्थ पाया जा सकता है। उन्होंने मुझे उपनिषदों में निहित सब कुछ का अर्थ दिखलाया है जिन्हें न भारतीय समझ पाये और न यूरोपवासी। इसलिए मुझे सम्पूर्ण वेदान्त और वेदों की पुनर्व्याख्या इस प्रकार करनी है कि जिससे यह पता चले कि कैसे सभी धर्म इसी से उत्पन्न हुए हैं और सब जगह वे एक ही हैं। इस प्रकार यह प्रमाणित हो जायेगा कि भारत विश्व-भर के धार्मिक जीवन का केन्द्र है और यह कि सनातन धर्म के माध्यम से ही वह सबका मुक्तिदाता और भाग्य-विधाता बनेगा।

CWSA खण्ड ३६, पृ. १७८

सिद्धि दिवस : श्रीकृष्ण का श्रीअरविन्द के शरीर में प्रवेश

वर्ष १९२६ में, मैंने एक प्रकार की अधिमानसिक सृष्टि आरम्भ की थी, यानी मैं जड़-द्रव्य में यहां पृथ्वी पर नीचे अधिमानस को लायी थी (चमत्कार तथा सब तरह की चीजें घटित होने लगी थीं)। मैंने इन सब देवों को अवतरित होने के लिए कहा, किसी एक शरीर के साथ तदात्म होने के लिए (उनमें से कुछ ने बिलकुल मना कर दिया)। अपनी आंखों से मैंने श्रीकृष्ण को देखा जो पहले से ही श्रीअरविन्द के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में थे और उनके शरीर में आने को सहमत थे। यह २४ नवम्बर का दिन था और यह 'श्रीमां' का आरम्भ था।...

यह था : श्रीकृष्ण ने श्रीअरविन्द के शरीर में अवतरण के लिए सहमति दे दी—वहीं स्थायी रूप से अचल रहने के लिए। तुम समझ रहे हो न, शरीर में अवतरित होने, और स्थायी रूप से वहां अचल बने रहने तथा केवल एक प्रभाव के रूप में जो आता-जाता रहता है, क्रियाशील बने रहने

—दोनों में बड़ा अन्तर है। देवता हमेशा घूमते रहते हैं और यह स्पष्टहै कि हमलोग भी अपनी आन्तरिक सत्ताओं में आते-जाते रहते हैं और एक साथ ही सैकड़ों-हजारों स्थानों में क्रिया करते हैं। कभी-कभी आना और एक शरीर के साथ स्थायी रूप से बंध जाने के लिए स्वीकृति देना, यानी एक स्थायी प्रभाव तथा एक स्थायी उपस्थिति—दोनों में अन्तर है।...

उसी समय उन्होंने लोगों से मिलना-जुलना बन्द करने और अपने कक्ष में एकान्तवास करने का निश्चय किया।...

मैंने एक प्रकार की 'अधिमानसिक सृष्टि' आरम्भ की थी, एक-एक सत्ता में हर एक देव को अवतरित कराने का कार्य—एक असाधारण ऊर्ध्वस्थ उन्मुखता थी! अस्तु, मैं इन सत्ताओं के सम्पर्क में थी और मैंने श्रीकृष्ण से कहा (क्योंकि मैं हमेशा उन्हें श्रीअरविन्द के चारों ओर देख रही थी) "यह सब तो ठीक है, किन्तु मैं अभी पृथ्वी पर नयी सृष्टि चाहती हूं—आपको अवतरित होना होगा।" उन्होंने कहा, "हां"। तब मैंने उन्हें देखा—मैंने अपनी आंखों से उन्हें देखा (आन्तरिक आंखों से, निस्सन्देह) कि वे श्रीअरविन्द के साथ संयुक्त हो गये हैं।

यह वर्ष १९२६ में घटित हुआ।

यह केवल... (कैसे कहूं?) श्रीकृष्ण की ओर से एक सहयोग था। श्रीअरविन्द के लिए इससे व्यक्तिगत रूप से कोई अन्तर नहीं पड़ा: यह बीते हुए युग का एक रूपायण था जिसने वर्तमान सृष्टि में सहयोग देना स्वीकार किया। इससे अधिक कुछ नहीं। यह पुरुषोत्तम का अवतरण था... पिछले कुछ समय से, अब नयी अभिव्यक्ति में भाग लेने के लिए जिसने स्वीकृति दे दी है।

दूसरी ओर, शिव ने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, "नहीं, मैं तभी आऊंगा जब तुम अपना कार्य पूरा कर लोगी। इस जगत् में, वर्तमान में यह जैसा है, मैं नहीं आऊंगा, परन्तु मैं मदद करने के लिए तैयार हूं।"

२ अगस्त १९६१ एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

श्रीकृष्ण के साथ टहलना

जब श्रीअरविन्द सशरीर थे और मैं उस मकान में रहती थी जो अब "डॉरमिटरी ऐनेक्स" कहलाता है, वहां एक लम्बा बरामदा था, मैं वहां

टहला करती थी (श्रीअरविन्द अपने कमरे में बैठे काम किया करते थे), और मैं अकेली चला करती थी; लेकिन मैं कभी अकेली न होती थी : कृष्ण हमेशा मेरे साथ होते थे—कृष्ण, यानी श्रीकृष्ण, लेकिन, जैसा कि हम चित्रों में देखते हैं वैसे नहीं, बल्कि उससे अधिक लम्बे, अधिक सुन्दर, और न ही उनका रंग अजीब-सा वह सलेटी नीला ही होता था! नहीं, वैसा बिलकुल नहीं। और हम हमेशा, हमेशा बरामदे में इधर-से-उधर एक साथ चला करते थे, वे मुझसे जरा-सा ही पीछे रहते (पीछे का संकेत)—मैं उनसे रत्ती-भर आगे होती थी, इतनी मानों मेरा सिर उनके कन्धे पर झुका हो और हम चलते थे (मुझे ऐसा अनुभव नहीं होता था मानों मेरा सिर उनके कन्धे पर टिका हो, लेकिन सिर का झुकाव होता था), और हम संग-संग चलते थे, हम बातचीत भी किया करते थे। जानते हो, यह चीज साल-भर से ज्यादा चली—जानते हो, हर रोज। उसके बाद यह क्रम टूट गया। उसके बाद मैं उन्हें बीच-बीच में देखा करती थी (जब हम नये घर में आये, मैंने उन्हें देखा); कभी-कभी रात को जब मैं बहुत थकी हुई होती थी, वे आते थे और मैं उनके कन्धे पर सिर टिका कर सो जाती थी। लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानती थी कि यह श्रीअरविन्द का स्वयं को दर्शाने का तरीका है। उसके बाद जब मैं यहां आयी (आश्रम का मुख्य भवन), श्रीअरविन्द अपना शरीर त्याग चुके थे, और मैंने यहां की छत पर भी टहलना शुरू कर दिया, मैं साथ-साथ अपना मन्त्र जपती जाती थी। श्रीअरविन्द आये और वे ठीक उसी स्थान पर थे जहां कृष्ण होते थे *(सिर के पीछे की वही समान मुद्रा)*; मैं टहलती थी और वे साथ टहलते थे, और हम एक साथ दिन-पर-दिन, दिनानुदिन इसी तरह टहलते। और यह चीज इतनी ठोस, इतनी अद्‌भुत हो रही थी कि मैं सोचने लगी, "लोगों और चीजों की देखभाल करना अब मैं बन्द कर दूं, मैं हमेशा के लिए इसी तरह रहना चाहती हूं!" उन्होंने तुरन्त मेरा विचार ताड़ लिया और वे बोले, "आज से मैं नहीं आ रहा हूं।" और उन्होंने आना बन्द कर दिया। मैंने कहा, "बहुत ठीक है," और मैंने परम 'प्रभु' के प्रति अपना मन्त्र जपना शुरू कर दिया, मैं चाहती थी कि वे मेरे साथ-साथ चलें, लेकिन स्वयं अपना रूप धारण करके, और किसी देवी-देवता का नहीं। और वह 'शक्ति', वह 'उपस्थिति'—सब कुछ वहां था और मैं अधिकाधिक स्पष्ट रूप से यह अनुभव कर रही थी कि

वे निर्वैयक्तिक रूप में ठीक मेरे पीछे स्थित हैं। कुछ दिनों तक मुझे ऐसी अनुभूति होती रही कि मैं किसी वस्तु के निकट हूं; और करीब घण्टे भर तक "वही उपस्थिति" बनी रही—एकदम से भौतिक उपस्थिति। वहां पहले कृष्ण थे, फिर श्रीअरविन्द, फिर मैं...।

१८ जून १९६५ एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

श्रीकृष्ण के साथ तदात्म

कृष्ण की तुलना में मेरी अपनी आध्यात्मिक महानता के विषय में तर्क प्रस्तुत करने की तुम मुझसे आशा नहीं कर सकते। यह प्रश्न केवल तभी प्रासंगिक होता यदि दो साम्प्रदायिक धर्म एक दूसरे के विरोध में होते, अरविन्दवाद और वैष्णववाद और प्रत्येक अपने-अपने भगवान् की महानता पर आग्रह करता। पर ऐसी बात नहीं है। और फिर, किस कृष्ण को मैं चुनौती दूं—गीता के कृष्ण को जो लोकातीत प्रभु हैं, परमात्मा, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, वैश्व देव, ब्रह्माण्ड के स्वामी, वासुदेव, जो सर्व हैं, सभी प्राणियों के हृदय में सर्वव्यापक हैं, या उस प्रभु को जो वृन्दावन, द्वारका तथा कुरुक्षेत्र में अवतार थे और जो मेरे योग के पथ-प्रदर्शक थे और जिनके साथ तादात्म्य की मैंने सिद्धि प्राप्त की? यह सब मेरे लिए कोई दार्शनिक या मानसिक चीज नहीं है, बल्कि दैनिक और क्षण-प्रतिक्षण की अनुभूति है और यह मेरी चेतना के उपादान का अन्तरंग है।... CWSA खण्ड ३५, पृ. ४३१-३२

भगवान् के विषय में मानसिक धारणाओं का—उन्हें कैसा होना चाहिये, उन्हें कैसे क्रिया करनी चाहिये, कैसे नहीं करनी चाहिये—इन सबके विषय में धारणाओं का क्या मूल्य हो सकता है भला—ये केवल मार्ग की बाधाएं बन सकती हैं। केवल स्वयं भगवान् महत्त्व रखते हैं। जब तुम्हारी चेतना भगवान् का आलिंगन कर लेती है तभी तुम जान सकते हो कि भगवान् क्या हैं, पहले नहीं। कृष्ण कृष्ण हैं, व्यक्ति इस बात की परवाह नहीं करता कि उन्होंने क्या किया या क्या नहीं किया; इसके लिए केवल उनके दर्शन, उनसे मिलन, उनकी ज्योति की अनुभूति का, उनकी उपस्थिति का, प्रेम की, आनन्द की अनुभूति का महत्त्व होता है। आध्यात्मिक अभीप्सा के लिए हमेशा ऐसा ही होता है—यही आध्यात्मिक जीवन का विधान है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ५६

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

नवम्बर

१. हमेशा अपने 'आदर्श' के प्रति निष्ठावान् और अपनी क्रिया में सच्चे और निष्कपट रहो।

२. योग के दृष्टिकोण से तुम जो करते हो वह नहीं बल्कि तुम कैसे करते हो वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

३. शान्त और सुखी जीवन के लिए प्रेम करने के आनन्द के लिए प्रेम करना सबसे अच्छी स्थिति है। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी चीजों के अन्दर भगवान् से प्रेम करना।
अगर इसका चरम बिन्दु यहां पहुंचे कि तुम वही चाहो जो भगवान् चाहते हैं, तो पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती है।

४. हमारी चेतना को समस्त अज्ञान से शुद्ध कर ताकि हम सत्य में तेरी सेवा कर सकें।

५. तुम्हारी मदद करने और तुम्हारी रक्षा करने के लिए मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं। अपने ऊपर व्यर्थ की कल्पनाओं का प्रभुत्व न होने दो। तुम्हारे हृदय की गहराइयों में शान्ति मौजूद है। वहां एकाग्र होओ और तुम उसे पा लोगे।

६. सभी अच्छा काम मिल-जुलकर धीरज के साथ किये गये प्रयास से सम्पन्न होता है।

७. दूसरों की भूलों पर क्रुद्ध होने से पहले तुम्हें अपनी भूलों को याद कर लेना चाहिये।

८. जीवन के प्रत्येक क्षण तुम्हें भागवत कृपा और निजी सन्तुष्टि के बीच चुनाव की उपस्थिति में खड़ा किया जाता है।

९. बलवान् के लिए बल ठीक है। लेकिन अभीप्सा और उसे उत्तर देने वाली भागवत कृपा कपोल-कल्पनाएं नहीं हैं। वे आध्यात्मिक जीवन की महान् वास्तविकताएं हैं। (श्रीअरविन्द)

१०. हे प्रभु! मेरे अन्दर तेरे इस पवित्र प्रेम का पुष्प प्रस्फुटित कर दे ताकि जो भी हमारे समीप आयें उन सबको वह सुगन्धित कर दे और वह

सुगन्ध उन्हें पवित्र बना दे।

११. इसी प्रेम में है शान्ति और आनन्द, समस्त शक्ति और सम्पूर्ण उपलब्धि का स्रोत। यह अचूक वैद्य है, परम सान्त्वनाप्रदाता है, यह विजेता है, सर्वोच्च शिक्षक है।

१२. जो कुछ है, जो कुछ होगा, जो कुछ नहीं है उस सबके अन्तस्तल में तेरी दिव्य चिरस्थायी मुस्कान विद्यमान है।

१३. हे प्रभु! हे दिव्य प्रेम, संसार भर में फैल जा, जीवन को पुनरुज्जीवित कर, बुद्धि को आलोकित कर, अहंकार के बांधों को तोड़ डाल, अविद्या को दूर कर, पृथ्वी के परम अधीश्वर के रूप में चमक उठ।

१४. सत्ता में सच्चे चैत्य जीवन की अभिव्यक्ति है शान्ति, प्रफुल्ल प्रशान्ति।

१५. ... किसी भी तरह का दुःख-दर्द हमारे किसी कमजोर बिन्दु का मूल्यवान् संकेत है, उस बिन्दु का जो हमसे महानतर आध्यात्मिक प्रयास की मांग करता है।

१६. तेरा प्रेम विश्व से भी अधिक विशाल है, और युग-युगान्तरों से भी कहीं अधिक स्थायी है : वह अनन्त, शाश्वत है; वह स्वयं तू है। और मैं बस तू ही बन जाना चाहती हूं तथा बस तू ही हूं, क्योंकि यही है तेरा विधान, यही है तेरी इच्छा।

१७. उस सत्य प्रेम को उत्पन्न कर जो सभी कष्टों का शमन करता है; उस अचल-अटल शान्ति को स्थापित कर जिसमें निवास करती है सच्ची भक्ति; प्रदान कर हमें वह चरम ज्ञान जो समस्त अन्धकार का विनाश कर देता है।

१८. उठो और सजीव बनो, उठो और ज्योतिर्मय बनो, उठो और सबके रूपान्तर के लिए युद्ध करो। देखो शक्ति यहां विद्यामान है।

१९. शेखी, शेखी, प्रगति के लिए सबसे बड़ी बाधाओं में से एक। अगर तुम सच्ची प्रगति की अभीप्सा करते हो तो तुम्हें बड़ी सावधानी के साथ इस मूर्खता से बचना चाहिये।

२०. तुम जो कुछ जानते हो उसे व्यवहार में लाओ, सीखने का इससे उत्तम उपाय और कोई नहीं है।

२१. असामञ्जस्य के बाहरी कारणों की अपेक्षा अधिक खोज करो आन्तरिक कारणों की। अन्तर ही बाह्य पर शासन करता है।

२२. सुख जीवन का लक्ष्य नहीं है, सामान्य जीवन का लक्ष्य है कर्तव्यपालन और आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है भगवान् की प्राप्ति।

२३. पीछे मत देखो, हमेशा आगे देखो, तुम जो करना चाहते हो उसे देखो—तो तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।

२४. अगर तुम ध्यानपूर्वक निरीक्षण करो तो तुम देखोगे कि ये सब चीजें —एक का दुर्व्यवहार, दूसरे का क्रोध—अत्यन्त गौण हैं और इन्हें उदासीनता के साथ लेना चाहिये। इनके कारण तुम अपने-आपको इतना अधिक विक्षुब्ध न होने दो। चरम महत्त्व की एकमात्र वस्तु है तुम्हारी साधना और तुम्हारा आध्यात्मिक विकास। बस, किसी भी चीज को उसका स्पर्श करने या उसे बिगाड़ने मत दो।

२५. अभीप्सा की लौ इतनी सीधी और इतनी तीव्र होनी चाहिये कि कोई बाधा उसे विलीन न कर सके।

२६. हर्ष के बाद शोक अनिवार्य रूप से आये ही इसका कोई यथार्थ कारण नहीं—सिवाय इसके कि प्राण की ऐसी आदत ही हो। पर इस आदत पर विजय पायी जा सकती है।

२७. कैसी भी कठिनाइयां या बाधाएं क्यों न आयें, एकमात्र आवश्यक चीज है कि मनुष्य भागवत शक्ति तथा पथ-प्रदर्शन में पूरा विश्वास रख कर चुपचाप चलता रहे, साधना की क्रिया के प्रति तब तक अपनी समस्त सत्ता को निरन्तर और अधिकाधिक खोलता रहे जब तक सब कुछ सचेतन न हो जाये और आवश्यक परिवर्तन के लिए सहमत न हो जाये।

२८. किसी आदर्श के लिए जीने में तुम जिस आनन्द का अनुभव करते हो वह पथ की सभी कठिनाइयों की निश्चित क्षतिपूर्ति है।
अपनी नियति में श्रद्धा रखो और तुम्हारा पथ प्रदीप्त हो उठेगा।

२९. स्थिरता और तमस् में घपला मत करो। स्थिरता है आत्म-संयत शक्ति, अचञ्चल और सचेतन ऊर्जा, आवेशों पर प्रभुत्व और अचेतन प्रतिक्रियाओं पर नियन्त्रण। काम में स्थिरता निपुणता का मूल और पूर्णता की अनिवार्य शर्त है।

३०. केवल उसी चीज को प्रोत्साहित करो जो तेजी से प्रभु की ओर ले जाती हो और भागवत प्रयोजन को पूरा करती हो।

स्वप्न

(श्रीअरविन्द द्वारा बंगला में लिखी कहानी का अनुवाद प्रस्तुत है।—सं.)

एक दरिद्र अंधेरी कोठरी में बैठा अपनी शोचनीय अवस्था और भगवान् के राज्य में अन्याय-अविचार की बातें सोच रहा था। दरिद्र अभिमान से अभिभूत हो कहने लगा, "लोग कर्म की दुहाई दे भगवान् के सुनाम की रक्षा करना चाहते हैं। यदि गत जन्म के पाप से मेरी यह दुर्दशा हुई होती, यदि मैं इतना ही पापी होता तो निश्चय ही इस जन्म में भी मेरे मन में पाप-चिन्तन का स्रोत बहता होता, इतने घोर पातकी का मन क्या एक दिन में निर्मल हो सकता है? और उस मोहल्ले के तीनकौड़ी शील को तो देखो, उसकी धन-दौलत, सोना-चांदी, दास-दासियों को देखो, यदि कर्मफल सत्य हो तो निःसन्देह वह पूर्व जन्म में कोई जगद्विख्यात साधु-महात्मा रहा होगा। परन्तु कहां, इस जन्म में तो उसका नाम-निशान तक नहीं दिखायी देता। ऐसा निष्ठुर, पाजी, बदमाश तो संसार में दूसरा नहीं। नहीं, कर्मवाद है भगवान् का छलावा, मन को फुसलाने का बहाना-मात्र। श्यामसुन्दर बड़े चतुर चूड़ामणि हैं, मुझे पकड़ाई नहीं देते, इसी से खैर है, नहीं तो ऐसा सबक सिखाता कि सब चालाकी धरी रह जाती।"

इतना कहते ही दरिद्र ने देखा कि हठात् उसकी अंधेरी कोठरी अतिशय उज्ज्वल आलोक-तरंग से प्रवाहित हो उठी है, फिर तुरत ही वह आलोक-तरंग अन्धकार में विलीन हो गयी और उसने देखा कि उसके सामने एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक हाथ में दीपक लिये खड़ा है—धीरे-धीरे मुस्कुरा रहा है, पर कुछ बोलता नहीं। उसके सिर पर मोर-मुकुट और पांवों में नूपुर देख दरिद्र ने समझ लिया कि स्वयं श्यामसुन्दर ही उसे पकड़ाई देने के लिए आये हैं। दरिद्र अप्रतिभ हो उठा, एक बार उसने सोचा कि प्रणाम करूं, किन्तु बालक का विहंसता चेहरा देख किसी तरह भी प्रणाम करने को मन नहीं हुआ। अन्त में उसके मुंह से यह वाक्य निकल पड़ा—"अरे कन्हैया, तू क्यों आ गया?"

बालक ने हंस कर कहा—"क्यों, तुमने ही तो मुझे बुलाया था? अभी-अभी तो मुझे चाबुक लगाने की प्रबल इच्छा तुम्हारे मन में उठी थी! अब तो मैं पकड़ में आ गया, उठ कर चाबुक लगाओ न।"

दरिद्र और भी अप्रतिभ हुआ, भगवान् को चाबुक लगाने की इच्छा के लिए उसे हृदय में अनुताप नहीं, किन्तु इतने सुन्दर बालक को स्नेह न कर उस पर हाथ उठाना उसे ठीक सुरुचि-संगत नहीं मालूम हुआ। बालक ने फिर कहा—"देखो हरिमोहन, जो मुझसे भय न कर मुझे अपना सखा मानते हैं, स्नेहभाव से गाली देते हैं, मेरे साथ क्रीड़ा करना चाहते हैं, वे मुझे बहुत ही प्रिय हैं। मैंने क्रीड़ा के लिए ही जगत् की सृष्टि की है, मैं सर्वदा इस क्रीड़ा का उपयुक्त साथी खोजता रहता हूं। परन्तु भाई, ऐसे साथी मिलते कहां हैं? सभी मुझ पर क्रोध करते हैं, दावा करते हैं, दान चाहते हैं, मान चाहते हैं, मुक्ति चाहते हैं, भक्ति चाहते हैं, न जाने क्या-क्या चाहते रहते हैं, किन्तु कहां, मुझे तो कोई नहीं चाहता! जो कुछ ये चाहते हैं वही दे देता हूं। क्या करूं, इन्हें सन्तुष्ट रखना ही पड़ता है, नहीं तो ये मेरी जान के गाहक बन जायें। देखता हूं, तुम भी कुछ चाहते हो। नाराज होने पर चाबुक खाने के लिए तुम्हें एक आदमी चाहिये, इसी साध को मिटाने के लिए तुमने मुझे बुलाया है। लो, चाबुक की मार खाने के लिए मैं आ गया—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*। फिर भी प्रहार करने के पहले यदि तुम मेरे मुंह से कुछ सुनना चाहो तो मैं तुम्हें अपनी प्रणाली समझा दूं। क्यों! राजी हो?"

हरिमोहन ने कहा—"समझा सकेगा तू? देखता हूं, तू बड़ा ही वाचाल है, किन्तु तेरे जैसा नन्हा-सा बालक मुझे कुछ सिखा सकेगा यह मैं कैसे विश्वास करूं?"

बालक ने फिर हंस कर कहा—"आजमा कर देखो, सिखा सकता हूं या नहीं।"

इतना कह श्रीकृष्ण ने हरिमोहन के सिर पर हाथ रखा। दरिद्र के समस्त शरीर में विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगी, मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी-शक्ति अग्निमयी भुजंगिनी के रूप में गर्जन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र की ओर दौड़ी, उसका मस्तिष्क प्राण-शक्ति की तरंगों से भर गया। तुरत ही उसे ऐसा लगने लगा कि घर के चारों ओर की दीवारें मानों दूर भागी जा रही हैं, नाम-रूपमय जगत् मानों उसे छोड़ अनन्त में छिप गया है। हरिमोहन बाह्यज्ञानशून्य हो गया। जब उसे फिर से चेतना आयी तो उसने देखा कि वह किसी अनजान जगह में बालक के संग खड़ा है, उसके सामने गाल

पर हाथ रखे गद्दी पर बैठे हैं एक वयोवृद्ध पुरुष, प्रगाढ़ चिन्ता में निमग्न। उस घोर दुश्चिन्ता-विकृत, हृदय-विदारक, निराशा-विमर्षित मुखमण्डल को देख हरिमोहन को यह विश्वास करने की इच्छा नहीं हुई कि यही हैं गांव के हर्ता-कर्ता तीनकौड़ी शील। अन्त में अत्यन्त भयभीत हो उसने बालक से कहा—"अरे, यह तूने क्या किया कन्हैया, चोर की तरह घोर रात्रि में दूसरे के मकान में घुस आया? पुलिस आकर हमें पकड़ लेगी और मारते-मारते दोनों का दम निकाल देगी! तीनकौड़ी शील के प्रताप को क्या तू नहीं जानता?"

बालक ने हंस कर कहा—"अच्छी तरह जानता हूं। परन्तु चोरी तो मेरा पुराना धन्धा है, पुलिस के साथ मेरी खूब पटती है, तुम डरो मत। अब मैं तुम्हें सूक्ष्म-दृष्टि देता हूं, वृद्ध के मन के भीतर देखो। तीनकौड़ी के प्रताप को तो तुम जानते ही हो, अब मेरे प्रताप को भी देखो।"

अब देख पाया हरिमोहन वृद्ध तीनकौड़ी के मन को। देखी शत्रु-आक्रमण से विध्वस्त धनाढ्य नगरी। उस तीक्ष्ण और ओजस्वी मन में कितनी ही विकराल मूर्तियां, पिशाच और राक्षस घुस कर शान्ति नष्ट कर रहे हैं, ध्यान भंग कर रहे हैं, सुख लूट रहे हैं। वृद्ध ने अपने प्यारे कनिष्ठ पुत्र के साथ कलह किया है, उसे घर से निकाल दिया है; अब वे बुढ़ापे में प्यारे पुत्र को खो शोक से म्रियमाण हो रहे हैं, किन्तु क्रोध, गर्व और हठ उनके हृदय-द्वार पर सांकल चढ़ा पहरा दे रहे हैं। क्षमा को वहां प्रवेश करने का अधिकार नहीं। उनकी कन्या के नाम दुश्चरित्रा होने का कलंक लगा है, अतः वृद्ध अपनी प्रिय कन्या को घर से निकाल अब उसके लिए रो रहे हैं; वृद्ध यह जानते हैं कि वह निर्दोष है, किन्तु समाज का भय, लोक-लज्जा, अहंकार और स्वार्थ ने स्नेह को दबा रखा है, उसे वे उभड़ने का अवसर ही नहीं देते। हजारों पाप-स्मृतियों से डर कर वृद्ध बार-बार चौंक उठते हैं, तथापि पाप-प्रवृत्तियों को सुधारने का साहस या बल उनमें नहीं। बीच-बीच में मृत्यु और परलोक की चिन्ता वृद्ध को अत्यन्त दारुण विभीषिका दिखा जाती। हरिमोहन ने देखा कि मरने की चिन्ता के परदे के पीछे से विकट यमदूत वृद्ध की ओर बार-बार झांक रहे हैं और दरवाजा खटखटा रहे हैं। जब-जब ऐसा शब्द होता है तब-तब वृद्ध की अन्तरात्मा भयातुर हो चीत्कार कर उठती है। इस भयंकर दृश्य को देख हरिमोहन भयभीत हो उठा और

बालक की ओर देख बोला—"अरे कन्हैया! यह क्या? मैं तो सोचता था कि वृद्ध परम सुखी हैं।"

बालक ने कहा—"यही है मेरा प्रताप। अब बोलो, किसका प्रताप अधिक है, उस मोहल्ले के तीनकौड़ी शील का या वैकुण्ठवासी श्रीकृष्ण का? देखो हरिमोहन! मेरे यहां भी पुलिस है, पहरा है, सरकार है, कानून है, न्याय है, मैं भी राजा बन कर खेल कर सकता हूं। पसन्द है तुम्हें यह खेल?"

हरिमोहन ने कहा—"ना रे बाबा, यह तो बड़ा बुरा खेल है। तुझे अच्छा लगता है यह खेल?"

बालक ने हंसते हुए उत्तर दिया—"मैं सभी खेल पसन्द करता हूं, चाबुक लगाना भी और चाबुक खाना भी।" इसके बाद उसने कहा—"देखो हरिमोहन, तुमलोग केवल बाहर का ही देखते हो, भीतरी रूप देखने की सूक्ष्म-दृष्टि तुमने अभी तक विकसित नहीं की है। इसीलिए कहते हो कि तुम दुःखी हो और तीनकौड़ी सुखी। इस आदमी को किसी भी पार्थिव वस्तु का अभाव नहीं—फिर भी यह लखपति तुम्हारी अपेक्षा कितनी अधिक दुःख-यन्त्रणा भोग रहा है। ऐसा क्यों? बता सकते हो? मन की अवस्था में ही सुख है और मन की अवस्था में ही दुःख। सुख और दुःख हैं मन के विकार-मात्र। जिसके पास कुछ नहीं, विपदा ही जिसकी सम्पदा है, वह अगर चाहे तो उस विपत्ति में भी परम सुखी हो सकता है। और देखो, जिस तरह तुम नीरस पुण्य में दिन बिताते हुए सुख नहीं पा रहे हो, केवल दुःख का ही चिन्तन करते हो, उसी तरह ये भी नीरस पाप में दिन बिताते हुए केवल दुःख का ही चिन्तन करते हैं। इसीलिए पुण्य से केवल क्षणिक दुःख और पाप से केवल क्षणिक सुख मिलता है। इस द्वन्द्व में आनन्द नहीं। आनन्द-आगार की छवि तो मेरे पास है। जो मेरे पास आता है, जो मेरे प्रेमपाश में बंधता है, मेरा सुमिरन करता है, मुझ पर जोर-जुल्म करता है, अत्याचार करता है—वह मेरे आनन्द की छवि के दर्शन का हकदार बन जाता है।

हरिमोहन बड़ी तत्परता के साथ श्रीकृष्ण की बातें सुनने लगा। बालक ने फिर कहा—"और देखो, हरिमोहन, शुष्क पुण्य तुम्हारे लिए नीरस हो गया है फिर भी संस्कार के प्रभाव को तुम नहीं छोड़ पा रहे, इस तुच्छ अहंकार को नहीं जीत पा रहे। इसी तरह वृद्ध के लिए पाप नीरस हो गया

है फिर भी संस्कार के वश हो वे उसे नहीं छोड़ पा रहे और इस जीवन में नरक-यन्त्रणा भोग रहे हैं। इसे ही कहते हैं 'पुण्य का बन्धन' और 'पाप का बन्धन'। अज्ञानजनित संस्कार है इस बन्धन की रस्सी। परन्तु वृद्ध की यह नरक-यन्त्रणा बड़ी शुभ अवस्था है। इससे उनका परित्राण और मंगल होगा।"

हरिमोहन अब तक चुपचाप बालक की बातें सुन रहा था, अब उसने कहा—"कन्हैया, तेरी बातें तो बड़ी मीठी हैं, किन्तु मुझे विश्वास नहीं हो रहा। सुख और दुःख मन के विकार हो सकते हैं, किन्तु इनका कारण है बाह्य अवस्था। देख, क्षुधा की ज्वाला से जब प्राण छटपटा रहे हों तब क्या कोई परम सुखी हो सकता है? अथवा जब रोग या यन्त्रणा से शरीर कातर हो रहा हो तब क्या कोई तुझे याद कर सकता है?"

बालक ने कहा—"चलो हरिमोहन, यह भी तुम्हें दिखा दूं।"

इतना कह बालक ने हरिमोहन के सिर पर पुनः अपना हाथ रखा। स्पर्श का बोध होते ही हरिमोहन ने देखा कि तीनकौड़ी शील के मकान का अब कहीं कोई पता नहीं। एक निर्जन सुरम्य पर्वत के वायुसेवित शिखर पर एक संन्यासी आसन लगाये ध्यानमग्न बैठे हैं, उनके चरणों के पास एक विराट्काय व्याघ्र प्रहरी की तरह लेटा हुआ है। बाघ को देख हरिमोहन के पैरों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया, किन्तु बालक उसे खींच संन्यासी के निकट ले ही गया। बालक से पार न पा लाचार हो हरिमोहन को चलना पड़ा। बालक ने कहा—"देखो, हरिमोहन।"

हरिमोहन ने देखा कि संन्यासी का मन उसकी आंखों के सामने एक खुली बही के समान पड़ा है, इसके पन्ने-पन्ने पर 'श्रीकृष्ण' लिखा है। संन्यासी निर्विकल्प समाधि के सिंह-द्वार का अतिक्रमण कर सूर्यलोक में श्रीकृष्ण के संग क्रीड़ा कर रहे हैं। उसने यह भी देखा कि संन्यासी कई दिनों से अनाहार हैं तथा गत दो दिनों से उनके शरीर को भूख-प्यास से विशेष कष्ट हो रहा है। हरिमोहन ने कहा—"अरे कन्हैया! यह क्या? बाबाजी तुझसे इतना प्रेम करते हैं फिर भी ये भूख-प्यास की पीड़ा भोग रहे हैं। तुझे क्या जरा भी समझ नहीं? इस निर्जन व्याघ्र-संकुल अरण्य में कौन आहार देगा इन्हें?"

बालक ने कहा—"मैं दूंगा, किन्तु एक और मजा देखो।"

हरिमोहन ने देखा कि बाघ ने उठ कर अपने पंजे के एक आघात से निकटवर्ती

वल्मीक को तोड़ दिया। फिर क्या था, छोटी-छोटी सैकड़ों चीटियां बाहर निकल क्रोध से भर संन्यासी के बदन पर चढ़ काटने लगीं। संन्यासी ज्यों-के-त्यों बैठे रहे ध्यानमग्न, निश्चल, अटल। अब बालक ने संन्यासी के कान में अति मधुर स्वर से पुकारा—"सखे!" संन्यासी ने आंखें खोलीं। पहले तो उन्होंने इस मोह-ज्वालामय दंशन का अनुभव नहीं किया, अभी तक उनके कान में वही विश्ववाञ्छित चित्तहारी वंशीध्वनि बज रही थी—ठीक उसी तरह जिस तरह वृन्दावन में राधा के कानों में बजी थी। उसके बाद उन सैकड़ों चीटियों के काटने से उनकी बुद्धि शरीर की ओर आकृष्ट हुई। संन्यासी अपने आसन से हिले नहीं—विस्मयपूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—"यह क्या? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। ओहो! यह तो श्रीकृष्ण मेरे संग क्रीड़ा कर रहे हैं, क्षुद्र चींटीसमूह के रूप में मुझे काट रहे हैं।" हरिमोहन ने देखा कि चींटियों के काटने की पीड़ा अब संन्यासी की बुद्धि तक नहीं पहुंचती, प्रत्येक दंशन में तीव्र शारीरिक आनन्द अनुभव कर, 'श्रीकृष्ण' नाम लेते हुए आनन्दपूर्वक तालियां बजाते हुए वे नाचने लगे। चींटियां धरती पर गिर-गिर कर भाग गयीं। हरिमोहन ने आश्चर्य के साथ पूछा—"कन्हैया, यह कैसी माया?"

बालक ताली बजा एक पैर के बल दो चक्कर काट ठठाकर हंस पड़ा। कहा—"मैं हूं जगत् का एकमात्र जादूगर! इस माया को तुम नहीं समझ सकोगे, यह मेरा परम रहस्य है। देखा? यन्त्रणा में भी संन्यासी मेरा स्मरण कर सके न! और देखो।"

संन्यासी प्रकृतिस्थ हो फिर बैठ गये; शरीर अब भूख-प्यास अनुभव करने लगा; किन्तु हरिमोहन ने देखा कि संन्यासी की बुद्धि उस शारीरिक विकार का अनुभव-मात्र करती है, न तो वह उससे विकृत ही हो रही है न लिप्त ही। तभी पहाड़ पर से किसी ने वंशीविनिन्दित स्वर से पुकारा: "सखे!" हरिमोहन चौंक पड़ा। यह तो श्यामसुन्दर का ही मधुर वंशीविनिन्दित स्वर था। उसके बाद उसने देखा कि शिला के पीछे से एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक थाली में उत्तम आहार और फल लिये आ रहा है। हरिमोहन हतबुद्धि हो श्रीकृष्ण की ओर देखने लगा। बालक उसके पास खड़ा है, फिर भी जो बालक आ रहा है वह भी अविकल श्रीकृष्ण का ही रूप है। दूसरा बालक वहां आया और संन्यासी को रोशनी दिखा कर

वे पधारे, यह अखिल जीवन बना त्योहार था!

बोला—"देख, क्या लाया हूं।"

संन्यासी ने हंस कर कहा—"आ गया? इतने दिनों तक भूखा ही रखा न? खैर, जब आया है तो बैठ, मेरे संग खा।"

संन्यासी और बालक उस थाली की खाद्य सामग्री खाने लगे, एक दूसरे को खिलाने लगे, आपस में छीना-झपटी करने लगे। आहार समाप्त होने पर बालक थाली ले अन्धकार में विलीन हो गया।

हरिमोहन कुछ पूछने ही जा रहा था कि हठात् उसने देखा कि न वहां श्रीकृष्ण हैं न संन्यासी! न बाघ और न पर्वत। वह अब एक भद्र गांव में वास कर रहा है। प्रचुर धन-दौलत है, स्त्री है, परिवार है, नित्य ब्राह्मणों को दान देता है, भिक्षुकों को दान देता है, त्रिकाल सन्ध्या करता है, शास्त्रोक्त आचार-विचार की यत्नपूर्वक रक्षा करता हुआ रघुनन्दन-प्रदर्शित पथ पर चलता है। आदर्श पिता, आदर्श स्वामी और आदर्श पुत्र बन कर जीवन यापन करता है। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने भयभीत होकर देखा कि जो इस भद्र ग्राम में वास करते हैं उनमें लेश-मात्र भी सद्भाव या आनन्द नहीं, वे यन्त्र की तरह बाह्य आचार-रक्षा को ही पुण्य समझते हैं। इस जीवन से हरिमोहन को आरम्भ में जितना आनन्द हुआ था, अब उसे उससे उतनी ही यन्त्रणा होने लगी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों उसे भयानक प्यास लगी है, किन्तु जल नहीं मिल रहा, वह धूल फांक रहा है, धूल, केवल धूल, अनन्त धूल खा रहा है। वहां से भाग वह एक दूसरे गांव गया, वहां एक विराट् अट्टालिका के सामने अपार जनसमूह और उसके आशीर्वाद का कोलाहल मचा हुआ था। हरिमोहन ने कुछ आगे बढ़ कर देखा कि तीनकौड़ी शील दालान में बैठे उस जनता में अशेष धन बांट रहे हैं, कोई भी वहां से निराश नहीं लौट रहा। हरिमोहन ठठाकर हंस पड़ा, उसने सोचा—"यह कैसा स्वप्न! तीनकौड़ी शील और दाता!" उसके बाद उसने तीनकौड़ी के मन को देखा। उसे ज्ञात हुआ कि उस मन में लोभ, ईर्ष्या, काम, स्वार्थ आदि हजारों अतृप्तियां और कुप्रवृत्तियां 'देहि, देहि' चिल्ला रही हैं। तीनकौड़ी ने पुण्य के लिए, यश के लिए, गर्व के वश उन भावों को अतृप्त अवस्था में ही किसी तरह दबा रखा है, अपने चित्त से उन्हें भगा नहीं दिया है। इसी बीच हरिमोहन को पकड़ कोई जल्दी-जल्दी परलोक दिखा लाया। हरिमोहन हिन्दू का नरक, ईसाई का नरक, मुसलमान का नरक, यूनानी का नरक,

हिन्दू का स्वर्ग, ईसाई का स्वर्ग, मुसलमान का स्वर्ग, यूनानी का स्वर्ग —न मालूम और कितने ही नरकों और कितने ही स्वर्गों को देख आया। उसके बाद उसने देखा कि वह अपने ही मकान में, अपनी परिचिता फटी चटाई पर मैले तोशक का अवलम्ब ले बैठा है, सामने ही श्यामसुन्दर खड़े हैं। बालक ने कहा—"रात अधिक हो गयी है, यदि मैं घर न लौटा तो घरवाले सभी मुझसे नाराज होंगे...। संक्षेप में ही कहता हूं। जिन स्वर्गों और नरकों को तुमने देखा है, वे सब स्वप्न-जगत् के हैं, कल्पना-सृष्ट हैं। मनुष्य मरने के बाद स्वर्ग-नरक जाता है, अपने गत जन्म के भाव को अन्यत्र भोगता है। तुम पूर्वजन्म में पुण्यवान् थे, किन्तु उस जन्म में प्रेम को तुम्हारे हृदय में स्थान नहीं मिला। न तुमने ईश्वर से प्रेम किया न मनुष्य से। इसलिए प्राण त्याग करने के बाद स्वप्न-जगत् में उस भद्र पल्ली में निवास कर पूर्व जीवन के भावों का तुम भोग करने लगे, भोग करते-करते उस भाव से ऊब गये, तुम्हारे प्राण व्याकुल होने लगे और वहां से निकल तुम धूलिमय नरक में वास करने लगे, अन्त में जीवन के पुण्य फलों का भोग कर पुनः तुम्हारा जन्म हुआ। उस जीवन में छोटे-मोटे नैमित्तिक कार्यों को छोड़, नीरस बाह्य व्यवहार को छोड़, किसी के अभाव को दूर करने के लिए तुमने कुछ नहीं किया। इसीलिए इस जन्म में तुम्हें इतना अभाव है। और अभी जो तुम नीरस पुण्य करते हो उसका कारण यही है कि केवल स्वप्न-जगत् के भोग से पाप-पुण्य का सम्पूर्ण क्षय नहीं होता, इनका सम्पूर्ण क्षय तो पृथ्वी पर कर्मफल भोगने से ही होता है। तीनकौड़ी गत जन्म में दाता कर्ण थे, हजारों व्यक्तियों के आशीर्वाद से इस जन्म में लखपति हुए हैं, उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं। परन्तु उनकी चित्तशुद्धि न होने के कारण उन्हें इस समय अपनी अतृप्त कुप्रवृत्तियों को पाप-कर्मों द्वारा तृप्त करना पड़ रहा है। कर्म का रहस्य कुछ समझ में आया? न तो यह पुरस्कार है न दण्ड—यह है अमंगल द्वारा अमंगल की और मंगल द्वारा मंगल की सृष्टि। यह है प्रकृति का नियम। पाप अशुभ है, उसके द्वारा दुःख की सृष्टि होती है; पुण्य शुभ है, उसके द्वारा सुख की सृष्टि होती है। यह व्यवस्था चित्त की शुद्धि के लिए, अशुभ के विनाश के लिए की गयी है। देखो हरिमोहन, पृथ्वी मेरी वैचित्र्यमयी सृष्टि का एक अति क्षुद्र अंश है, किन्तु कर्म द्वारा अशुभ का नाश करने के लिए तुमलोग वहां जन्म

ग्रहण करते हो। जब पाप-पुण्य के हाथों से परित्राण पा तुमलोग प्रेम-राज्य में पदार्पण करते हो तब इस कार्य से छुटकारा पा जाते हो। अगले जन्म में तुम भी छुटकारा पा जाओगे। मैं अपनी प्रिय भगिनी शक्ति और उसकी सहचरी विद्या को तुम्हारे पास भेजूंगा, परन्तु देखो, एक शर्त है, तुम मेरे खेल के साथी बनोगे, मुक्ति नहीं मांग सकोगे। राजी हो?"

हरिमोहन ने कहा—"कन्हैया! तूने मेरा बड़ा उपकार किया! तुझे गोद में ले प्यार करने की बड़ी इच्छा होती है; मानों इस जीवन में अब कोई तृष्णा नहीं रह गयी।"

बालक ने हंसते हुए कहा—"हरिमोहन, कुछ समझे?"

हरिमोहन ने उत्तर दिया—"समझा क्यों नहीं?" इसके बाद उसने कुछ सोच कर कहा—"अरे कन्हैया, तूने फिर मुझे छला। अशुभ का सृजन तूने क्यों किया इसकी तो कोई सफाई दी ही नहीं।" इतना कह उसने बालक का हाथ पकड़ लिया। बालक ने अपना हाथ छुड़ा हरिमोहन को धमकाते हुए कहा—"दूर रहो, घण्टे-भर में ही मेरी सभी गुप्त बातें कहला लेना चाहते हो?" इतना कह बालक ने हठात् दीपक बुझा दिया और हरिमोहन से कुछ दूर हट कर हंसते हुए कहा—"क्यों हरिमोहन, चाबुक मारना तो तुम एकदम भूल ही गये। इसी डर से तो मैं तुम्हारी गोद में नहीं बैठा, कहीं तुम बाह्य दुःख से क्रुद्ध हो मेरी खबर न लेने लगो! मुझे तुम पर कतई विश्वास नहीं।"

हरिमोहन ने अन्धकार में अपना हाथ बढ़ाया, किन्तु बालक और दूर हट गया, बोला—"नहीं, यह सुख मैं तुम्हारे अगले जन्म के लिए रख छोड़ता हूं। अच्छा, अब चला।"

इतना कह उस अंधेरी रात में बालक न जाने कहां अदृश्य हो गया। हरिमोहन उसकी नूपुरध्वनि सुनते-सुनते जाग उठा। जग कर उसने सोचा, "यह कैसा स्वप्न देखा! नरक देखा, स्वर्ग देखा, और भगवान् को 'तू' कहा, छोटा-सा बालक समझ कितना डांटा, डपटा! कैसा पाप किया। परन्तु जो हो, मन में अपूर्व शान्ति का अनुभव कर रहा हूं।" हरिमोहन अब उस कृष्णवर्ण बालक की मोहिनी मूरत को याद करने लगा और वह रह-रह कर कह उठता—"कितनी सुन्दर, कितनी मनोहर!"

ख्वाहिश

वर्षों से यह ख्वाहिश
जगी है मन में
मैं भी बन जाऊं
एक नन्हीं-सी बांसुरी
जो विराजे तुम्हारे होठों पर,
कोमल करों के स्पर्श से
फूट पड़ें सप्त स्वर।

लेकिन अफसोस!
मुझमें 'बांस की बांसुरी' जितनी
योग्यता भी नहीं।

बांसुरी तो भीतर से पोली होती है
जिसके भीतर फूंक मारते ही
विविध रागिनी प्रकट होती है।

मैं तो इतनी सघन हूं
'मैं-पन' से ठसाठस भरी हुई
जिसमें एक कतरा सांस भी नहीं समाता
फिर कैसे बजूंगी बांसुरी-सी?

तुम्हारे स्वर में बजने के लिए
मुझे खुद को खाली करना होगा।

एक बार रिक्त हो गयी
तो फिर मुझसे तुम
मनचाहे स्वर निकाल सकोगे
और अपनी मधु तानों से
भर सकोगे दिग्दिगन्त!

—कंचन ('मैत्री' से साभार)

एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार

[तारा जौहर कई वर्षों तक श्रीअरविन्दाश्रम के शारीरिक-शिक्षण विभाग में छोटे बच्चों (हरित दल) की कप्तान रहीं।]

मधुर मां,

भगवान् ने अपना मार्ग इतना कठिन क्यों बनाया है? वे चाहें तो उसे सरल बना सकते हैं, है न?

सबसे पहले व्यक्ति को यह जानना चाहिये कि बुद्धि और मन भगवान् के बारे में कुछ भी नहीं समझ सकते। न तो यह कि वे क्या करते हैं, न यह कि वे कैसे करते हैं और यह तो बिलकुल ही नहीं कि वे क्यों करते हैं। भगवान् के बारे में थोड़ा-बहुत जानने के लिए व्यक्ति को विचार से ऊपर उठना चाहिये और चैत्य चेतना में, अन्तरात्मा की चेतना में या आध्यात्मिक चेतना में प्रवेश करना चाहिये।

जिन लोगों को अनुभूति प्राप्त हो चुकी है उन्होंने हमेशा यही कहा है कि पथ की कठिनाइयां और दुःख-दर्द वास्तविक नहीं हैं बल्कि मानव अज्ञान की रचनाएं हैं और जैसे ही व्यक्ति इस अज्ञान से बाहर हो जाता है वैसे ही कठिनाइयों से भी बाहर हो जाता है। भगवान् के साथ सचेतन सम्पर्क होने के साथ ही साथ मनुष्य अनन्य आनन्द की जिस स्थिति में निवास करता है उसके बारे में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

तो उनके अनुसार इस प्रश्न का कोई वास्तविक आधार ही नहीं है और यह पूछा ही नहीं जा सकता।

२१ सितम्बर १९५९

मधुर मां,

आपने लिखा है कि अपनी चैत्य सत्ता के साथ सचेतन सम्पर्क साधने के लिए तुम "उसे जानने और अनुभव करने के लिए अभीप्सा करो, अपने-आपको उसका प्रभाव ग्रहण करने के लिए खोलो और बहुत सावधानी के साथ... सच्चाई और ईमानदारी के साथ उसका

अनुसरण करो।" लेकिन मधुर मां, मैं नहीं जानती कि यह कैसे किया जाये। मुझे यह ज्यादा आसान मालूम होता है कि मैं आपके बारे में सोचूं, आपसे सम्पर्क साधूं और आपकी ओर खुलूं।

यह भी एक तरीका है जो निश्चय ही उतना ही अच्छा है जितना दूसरा।

आत्म-सिद्धि पाने के लिए बहुत-से तरीके हैं और हर एक को वह मार्ग चुनना चाहिये जो उसके पास स्वाभाविक रूप से आये।

लेकिन सचमुच प्रभावकारी होने के लिए हर एक मार्ग की अपनी मांगें हैं।

मेरे बारे में सोचते समय तुम्हें केवल बाहरी व्यक्तित्व के बारे में नहीं बल्कि उसके बारे में भी सोचना चाहिये जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है, जो उसके पीछे स्थित है। क्योंकि तुम्हें यह कभी न भूलना चाहिये कि बाहरी व्यक्ति शाश्वत सद्वस्तु का केवल एक रूप और प्रतीक मात्र है और भौतिक रूप द्वारा तुम्हें इस उच्चतर सद्वस्तु की ओर मुड़ना चाहिये। भौतिक सत्ता शाश्वत सद्वस्तु की सच्ची अभिव्यक्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि वह अतिमानसिक अभिव्यक्ति द्वारा पूरी तरह रूपान्तरित न हो जाये। और तब तक तुम्हें उसके द्वारा ही सत्य को पाना चाहिये।

२२ सितम्बर १९५९

मधुर मां,

क्या नींद में अपने ऊपर पूरी तरह नियन्त्रण पाना सम्भव है? उदाहरण के लिए, क्या मैं आपको जब चाहूं अपने स्वप्नों में देख सकती हूं?

नींद में नियन्त्रण पूरी तरह सम्भव है और अगर तुम अपने प्रयास में डटी रहो तो वह उत्तरोत्तर आता है। तुम अपने स्वप्न याद करने से शुरू करो, फिर तुम नींद में धीरे-धीरे अधिकाधिक सचेतन बनो और तब तुम न केवल अपने स्वप्नों पर नियन्त्रण पा सकती हो बल्कि नींद में अपनी क्रियाओं का मार्गदर्शन और व्यवस्थापन भी कर सकोगी।

अगर तुम अपनी इच्छा और अपने प्रयास में डटी रहो तो निश्चय ही

तुम रात को नींद में मेरे पास आना और मुझे पा लेना सीख जाओगी और फिर बाद में जो रात को हुआ होगा वह भी याद रख सकोगी।

इसके लिए दो चीजें जरूरी हैं जिन्हें तुम्हें अभीप्सा और शान्त तथा सतत प्रयास द्वारा विकसित करना होगा।

१. अपने विचार को मेरे पास आने और मुझे पाने की इच्छा पर एकाग्र करो; और फिर इसके पीछे लगी रहो, पहले कल्पना के प्रयास द्वारा और फिर स्थूल और बढ़ते हुए वास्तविक तरीके से, जब तक कि तुम मेरी उपस्थिति में न आ जाओ।

२. जाग्रत् और सुषुप्त अवस्था के बीच एक तरह का पुल स्थापित करो ताकि जब तुम जागो तो तुम्हें याद रहे कि क्या हुआ था।

हो सकता है कि तुम तुरन्त सफलता पा जाओ, लेकिन बहुधा इसमें समय लगता है, तुम्हें अपने प्रयास में आग्रहशील रहना चाहिये।

२५ सितम्बर १९५९

मधुर मां,

अन्तरात्मा की क्या भूमिका है?

अन्तरात्मा के बिना तो हमारा अस्तित्व ही न होगा!

अन्तरात्मा वह है जो कभी भी भगवान् को छोड़े बिना उनसे आती है और अभिव्यक्त होना बन्द किये बिना उनके पास लौट जाती है।

अन्तरात्मा भगवान् है जिसे भगवान् होना छोड़े बिना व्यक्ति बनाया गया है।

अन्तरात्मा में व्यक्ति और भगवान् शाश्वत रूप से एक हैं; अतः, अपनी अन्तरात्मा को पाने का अर्थ है भगवान् को पाना, अपनी अन्तरात्मा के साथ तादात्म्य पाने का अर्थ है भगवान् के साथ एक होना।

अतः, यह कहा जा सकता है कि अन्तरात्मा का कार्य है मनुष्य को एक सच्ची सत्ता बनाना।

२९ सितम्बर १९५९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ.२५७-६०

दुनिया बड़ी खराब जगह है

(हमारे आश्रम की अरुणा बहन, जिन्हें हम प्यार से 'अन्ना बहन' पुकारते थे, आज हमारे बीच नहीं रहीं। छोटे कद की, दुबली-पतली, सींक-सलाई अन्ना के न शरीर में, न ही स्वभाव में हमने कभी रत्ती-माशा का भी फर्क देखा। हमेशा हंसमुख, सरलता की प्रतिमूर्ति अन्ना को आश्रम का बच्चा-बच्चा चाहता था, क्योंकि वे लगभग ६० सालों तक नन्हें-मुन्नों की शारीरिक-शिक्षण विभाग की कप्तान रही थीं, जो नन्हें-मुन्ने आज दादा-दादी, नाना-नानी बन चुके हैं, और हम सबकी चहेती 'अन्ना बहन' अन्त तक *अन्ना* ही रहीं।

गुजराती होते हुए भी उन्हें हिन्दी से बड़ा लगाव था। अपने विद्यार्थी-काल में भी उन्होंने हिन्दी पढ़ी। अपने अध्यापक स्व. रवीन्द्रजी की भी वे दुलारी थीं। रवीन्द्रजी की यह खासियत थी कि वे अपने विद्यार्थियों पर कहानियां बनाया करते थे और उन कहानियों में सच्चाई का पुट हमेशा हुआ करता था।

आज अपनी प्यारी "अन्ना" की स्मृति में हम उसी कहानी को दोबारा छाप रहे हैं जो रवीन्द्रजी ने खास उन्हीं के लिए कभी लिखी थी।—सं.)

पुनश्च—अन्ना को सोना बड़ा पसन्द था, जहां कहीं, जब कभी अवसर मिलता वे लम्बलेट हो जातीं और छोटी-मोटी नींद निकाल लिया करतीं ... इसी की पृष्ठभूमि में इस कहानी का जन्म हुआ था।)

अब इतना जमाना बीत चुका है, मुझे उसका असली नाम याद नहीं रहा पर मैं उसे पुलिस कह कर बुलाया करता था। वह थी एक छोटी-सी, कमजोर लड़की पर बातें बनाने में उस्ताद और हर बात में किसी-न-किसी तरह अपनी चला लेती थी। उसकी जिद दृढ़ता में पगी होती थी और ना सुनना उसे आता ही नहीं था।

हां, तो एक दिन पुलिस ने आकर मुझसे कहा, "घर पर मां सोने नहीं देतीं, सारे समय सिर पर सवार रहती हैं, अब यह कर और अब वह कर। मैं जरा सो जाऊं तो न जाने क्यों उनके दिमाग में गिजाइयां घूमने लगती हैं और जब तक मुझे उठा न दें तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। अरे और तो

और, यूं जगाने से न उठूं तो वे मेरे ऊपर ठण्डा पानी, गरम पानी डालने से नहीं चूकतीं। कभी बरफ लाकर मेरे माथे पर रख देती हैं, कभी गरम दूध का प्याला। मैं हंसी-खुशी उठूं या रो-धोकर इसकी उन्हें परवाह नहीं है, बस मुझे उठ जाना चाहिये। फिर भले मैं 'कॉमिक्स' पढ़ा करूं, वे यही समझती हैं कि मैं स्कूल का काम कर रही हूं और इससे खुश रहती हैं।"

इतना बड़ा भाषण एक सांस में दे जाने के बाद पुलिस ने मेरे साथ आंखें मिलायीं। वह देखना चाहती थी कि मेरे ऊपर क्या असर हुआ, लेकिन मैं उसका आशय न समझ पाया। उसकी ओर टुकुर-टुकुर ताकता ही रहा। उसने शायद मुझसे यही आशा की थी।

आखिर मुंह फोड़ कर उसने कहा, "नहीं समझे न मेरी बात, मैं जानती थी, पढ़ने-लिखने से कुछ नहीं होता। आपका उदाहरण मेरे सामने है। अजी साहब, मैं अभी खाना खाकर उठी हूं, देख नहीं रहे मेरी पलकें भारी हो रही हैं, निद्रा देवी मेरी आंखों की कोठरी का दरवाजा खटखटा रही हैं और आपसे इतना नहीं होता कि मुझसे कह दें, अच्छा चलो, यहीं सो जाओ।"

अब बात समझ में आयी। सचमुच मेरी पढ़ाई-लिखाई उसका भाषण समझने में किसी काम न आयी। उसका हर्जाना देते हुए मैंने दूने उत्साह के साथ कहा, "अरे पुलिस, तुझे भी इतनी सभ्यता आती है? तू तो जब मरजी होती है यहां पसर जाती है, फिर आज ही ऐसी क्या बात है कि मेरी अनुमति की जरूरत पड़ गयी? मैं कैसे जानता कि तू इतनी सभ्य बन गयी है। सो क्यों नहीं जाती? तू कोई मेहमान थोड़े ही है?"

पुलिस पीछे रहने वाली न थी। उसने झट उत्तर दिया, "सोने को तो मैं जब मरजी यहां सो सकती हूं और सोती भी हूं, लेकिन अम्माजान को पता लग गया तो वे हाथ में लगुड़ लेकर आ जायेंगी। तब आपको मेरी रक्षा करनी होगी और यह देखना होगा कि वे मेरी नींद हराम न करने पायें।"

मैंने कहा, "अरे इसमें क्या है, मैं दरवाजे की चिटकनी बन्द कर दूंगा फिर वे कैसे अन्दर आ सकेंगी।" मैंने सोचा, मैंने बाजी जीत ली लेकिन अन्तिम जीत हमेशा पुलिस की होती है। उसने कहा, "अरे, आप जानते नहीं मेरी मां को। मैं अपने घर में इस तरकीब को आजमा चुकी हूं। हमारे घर में बन्दरों को भगाने के लिए एक लग्गा रखा है। मां छत पर चढ़ कर खिड़की में से लग्गा डाल कर द्वार खोल लेंगी। यह तो उनके लिए बांए

हाथ का खेल होगा।"

मैंने हार मान ली और कहा, "अरे बाबा, अब बन्द भी कर अपना लेक्चर। मैं तेरे ऊपर पहरा दूंगा और तुझे कोई जगा न पायेगा।" पुलिस की जीत हो गयी और वह खुशी-खुशी वहीं पड़ी चटाई पर लम्बी हो गयी और लगी सपने देखने। उसकी मुख-मुद्रा से, उसके शरीर से पता लगता था कि वह कोई अच्छा सपना देख रही है। मैं वहां से थोड़ी दूर बैठा अपना काम करता रहा।

अचानक घड़ी पर नजर गयी, चार बज रहे थे। पुलिस लगभग एक बजे से सो रही थी और अभी उसके उठने का कोई ठिकाना न था। मैंने सोचा, इसकी मां चिन्ता कर रही होगी, इसे साढ़े चार तक खा-पीकर खेल के मैदान में पहुंच जाना चाहिये। चलो, जगा ही दूं। पहले धीरे-धीरे आवाज दी, फिर घण्टी बजायी, धीरे से झकझोरा और फिर जोर से हिलाया, लेकिन वहां कान पर जूं तक न रेंगी।

आखिर मैंने तीनों अस्त्रों का एक साथ उपयोग किया। आवाजें, घण्टानाद और जोर से झकझोरना, तब कहीं जाकर पुलिस को होश आया कि उसकी नाक पर मक्खी बैठी थी और सोते-सोते एक हाथ मेरी ओर फेंकते हुए उसने कहा, "लेकिन मक्खी, उसका क्या।"

मैंने सोचा, आधा रण जीत लिया। बढ़े हुए उत्साह के साथ मैंने फिर प्रयास शुरू किया। मुझे विश्वास हो गया कि कुम्भकर्ण की निद्रा कोई अतिशयोक्ति नहीं है। दूसरे प्रयास के अन्त में उसने फिर से वही मन्त्र दोहराया, "लेकिन मक्खी, उसका क्या" और फिर गुड़ीमुड़ी होकर सो गयी।

इतने में उसकी अम्माजान बरफ का टुकड़ा लिये हुए आ पहुंची और पुलिस को जगाने का तीसरा अभियान शुरू हुआ। बरफ के आगे पुलिस की नींद ज्यादा न ठहर सकी। बड़ी अनखाई हुई, आंखें मलती, बिसूरती हुई उठी और बोली, "दुनिया बड़ी खराब जगह है" और जाकर मेरी आरामकुरसी पर धब्ब से गिर पड़ी।

मैंने उसकी मां को समझा-बुझाकर विदा किया और वह फिर से निद्रालोक में दूर निकल गयी।

आज बरसों के बाद भी उसका वह मन्त्र समय-समय पर विभिन्न परिस्थितियों में याद आ जाता है, "दुनिया बड़ी खराब जगह है।"

मेरे भी तो अधिकार छिन गये हैं...

(हमारा यह अंक मुख्य रूप से श्रीकृष्ण को समर्पित है, अतः हम कहानी भी बंसी-बजैया की ही चाह रहे थे। 'पुरोधा' के पुराने अंकों को खंगालने का हमारा परिचित अभियान आरम्भ हो गया... और चितचोर की यह अपूर्व कथा बहुत शीघ्र ही दृष्टिगोचर भी हो गयी।

सम्भवतः हर बार यह कहने की आवश्यकता अब नहीं रही कि ऐसी अनुपम कहानियां न कभी फीकी पड़ती हैं और न ही ये कभी "पुनरावृत्ति" का बोझ अपने साथ लिये चलती हैं। अस्तु... —सं.)

अछूत थी वह, लेकिन श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त। ब्राह्मण उसकी परछाईं से भी अपवित्र हो जाते थे—इसलिए ऐसे स्थानों पर जाने से कतराती थी जहां तथाकथित उच्च कुल के लोगों का अधिक आना-जाना रहता था —लेकिन क्या यह इतना सरल था? मन्दिर के घण्टे का नाद, शंख की फूत्कार उसके मन को आलोड़ित कर जाते, पैर चञ्चल हो उठते मन्दिर की दिशा में भागने के लिए, लेकिन मन उन्हें जबरन रोक देता।

दिन-रात हृदय से वह अपने आराध्य को भजती; सोते-जागते वही कृष्ण उसके अभिन्न सखा रहते—एक तरह की प्रसन्नता को अपने हृदय में संजोये रखती, लेकिन था तो उसका मानव हृदय ही—जब-जब मन्दिर के घण्टे सुनती, अपने भाग्य को धिक्कारती और साथ ही विह्वल हो उठती। उसकी झोंपड़ी के पास ही एक छोटा-सा कृष्ण-मन्दिर था। प्रतिदिन गोधूलि-वेला के समय जब मन्दिर में हो रही आरती से सारा वातावरण गूंज उठता तो वह अपने-आपको संभाल न पाती, हाथ का काम छोड़ कर ऐसी बदहवास मन्दिर की दिशा में दौड़ती मानों कृष्ण की बंसी की तान से खिंची चली जा रही हो। लेकिन मन्दिर के दरवाजे तक जाने का साहस वह कभी न जुटा पायी, बस थोड़ी दूर पर अपने आराध्य को आंसुओं की लड़ियों का हार अर्घ्य के रूप में चढ़ा कर आरती समाप्त होने के पहले ही इस भय से लौट आती कि कहीं उसकी परछाईं किसी भक्त पर न पड़ जाये।

जीवन इसी तरह बीत रहा था कि अचानक एक दिन सड़क से कूड़ा उठाते समय उस अछूत युवती की दृष्टि किसी चीज पर टंक गयी—क्या

वह सपना देख रही थी? कूड़े के ढेर से मिली उसको कदम्ब के तले बंसी बजाते श्रीकृष्ण की मिट्टी की मूर्ति—रोम-रोम नाच उठा उसका—कुबेर का खजाना उसके हाथ लग गया था। काम में मन ही नहीं लगा उसका उस रोज, हृदय को तो बांध दिया था उस मनमोहिनी मूरत के साथ उसने अपने आंचल में! अपनी कुटिया में पहुंच, मूर्ति को आंचल से निकालते-निकालते वह भक्तिसागर में ऐसी डूबी कि कब शाम हो गयी, कब मन्दिर की आरती होकर पट भी बन्द हो गये, रात भी उतर आयी—इन सब बातों का उसे जरा भी भान न हुआ। भूख-प्यास, नींद तो मानों उड़ गयीं।

सवेरे जब सूर्य की प्रथम किरणों ने उसकी कुटिया में आकर मुरलीमनोहर का आलिंगन कर चारों तरफ सोना ही सोना बिखेर दिया तो उसकी तन्द्रा टूटी—सूर्य के प्रकाश में वह भी सुनहरी हो उठी, गद्‌गद-हृदय बोल उठी—"अरे देखो तो कन्हैया, तुमने आकर मेरी इस टूटी-फूटी झोंपड़ी को सुनहरे महल में रूपान्तरित कर दिया...!"

कन्हैया मन्द-मन्द मुस्कुरा उठे।

हुलस के साथ वह अपने काम में जुट गयी और जैसे ही शाम की आरती की घण्टी बजी नहीं कि उसके पैर मचल उठे। घर के बाहर पैर रखते ही सहसा पलट कर अन्दर आयी और बोल उठी—"देखो कन्हैया, मन्दिर तक जाकर बस अभी आयी...।"

उस शाम खिंची-सी चली गयी वह ठीक मन्दिर के पट तक। अन्दर जाने की इच्छा इतनी प्रबलतर हो उठी कि अन्तर की बाढ़ आंखों से बह चली, लेकिन कोई उपाय न था। अचानक उसके कानों में मिश्री-घुला स्वर गूंज उठा—"क्यों रोती हो मां?" घूम कर देखा तो ठगी-सी खड़ी रह गयी—इतना सुदर्शन युवक उसने जीवन में पहली बार देखा था, साक्षात् सौन्दर्य उतर आया था भू पर, लेकिन स्त्री की आंखों की धार निरन्तर बहती रही। युवक ने और भी स्नेहसिंचित स्वर में पूछा—"क्या कष्ट है तुम्हें, रोती क्यों हो मां?"

"बेटे, रोती इसलिए हूं कि मैं ठहरी अछूत स्त्री। मन्दिर में जाने का अधिकार मुझे नहीं है। प्रभु की यह कैसी लीला है यही मैं रोज रो-रो कर उनसे पूछती हूं। किस जन्म का पाप मुझे दे रहा है मेरा कन्हैया?"

"अरे यह भी कोई कारण हुआ अपने आंसू बहाने का?" युवक अट्टहास

कर उठा, "मेरे भी तो अधिकार छिन गये हैं अन्दर जाने के, इसलिए डरती क्यों हो मां, तुम अकेली ही बहिष्कृत नहीं हो।"

"क्या!" युवती का मुंह खुला का खुला रह गया। "क्या तुम भी अछूत हो, लेकिन यह तो असम्भव दीखता है। तुम्हारे तो रोम-रोम में सुन्दरता और कुलीनता का सागर ठाठें मार रहा है। कौन हो तुम वत्स, रहस्यमय जान पड़ते हो।" स्त्री बोल उठी।

"क्या मुझे नहीं पहचाना तुमने मां? मैं वही हूं जिसे ये भक्त सोचते हैं कि इन्होंने पूजा करने के लिए मन्दिर में कैद कर रखा है, लेकिन मैं न कभी इस तरह के भेदभाव करने वाले पूजास्थलों में था और न कभी रहूंगा। मैं तो आजीवन बन्दी रहूंगा तुम्हारे जैसे सच्चे हृदयों के अन्दर जो दिन-रात निश्छल भक्तिसागर में डूबे रहते हैं। जल्दी चलो मां, मुझे जोरों की भूख लग रही है—वही घर तुम्हारा मन्दिर है।"

और वह सुदर्शन युवक अन्तर्धान हो गया। उन्मत्त अवस्था में युवती अपनी कुटिया तक पहुंची। अन्दर पांव रखते ही कृष्ण कन्हैया की मूरत मुस्कुराते-मुस्कुराते मानों उसे उलाहना दे रही थी—"मुझे इस तरह निराहार, अकेला छोड़ कर कहां चली गयी थी मां?"

—वन्दना

कृष्ण अन्तरस्थ भगवान् हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। वे सर्वोच्च प्रभु के आनन्द और प्रेम का सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कुराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे साथ-ही-साथ खिलाड़ी, खेल और खेल के सभी साथी—तीनों हैं।

—श्रीअरविन्द

भूल-सुधार

अक्तूबर के महीने के मुखपृष्ठ के चित्र की चित्रकार ऋतम् उपाध्याय का नाम दर्ज करना रह गया। इस भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। —सं.

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन— 0565—3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st November 2016
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra
Mother of Nanak, Grade 4 and Nritu Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon